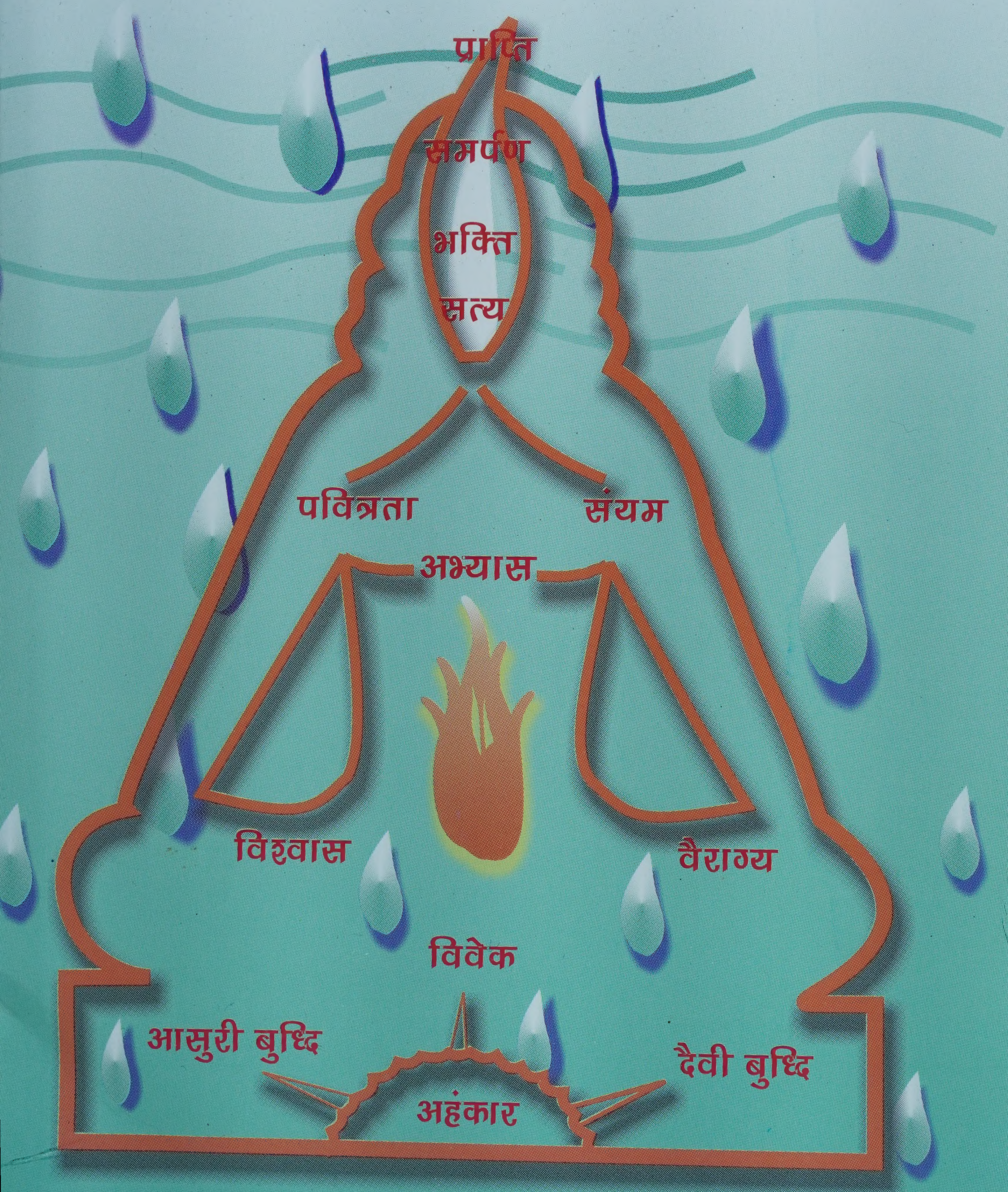
सागर समाया बूंद में



बूंद समाई समुंद में - जाने सब कोई
समुंद समाया बूंद में - बूझे विरला कोई

सागर समाया [illegible]

(रचना संग्रह)

[illegible]

सागर समाया बूंद में

(रचना संग्रह)

भाऊ हेमन नानवाणी

"सागर समाया बूंद में"

(रचना संग्रह)

भाउ हेमन नानवाणी

अमृत वेला आश्रम, खंडाला ४१० ३०१ (दूरध्वनि : २१२८००/२६९३०३)

वर्ष : 'रामनवमी' चैत्र २०६२

Published By :
Gobind Balani,
10/A, Sukhwani Park,
325, N. Koregaon Road, Pune - 411001
Phone : 26113611. Mobile : 9823160711

Typesetting :
Harkishin Samtani,
MSP Pagesetters,
S. No. 24/2B, Plot No. 12,
Kharadi, Pune = 411014.
Phone : 25125309

Printed By :
Haresh Dodeja
NOBLE Printers, 'Shiv Ganga Chambers'
Budhwar Peth, Pune - 411002
Phone : 24453540

Price : Rs.30/=

अपर्णम्

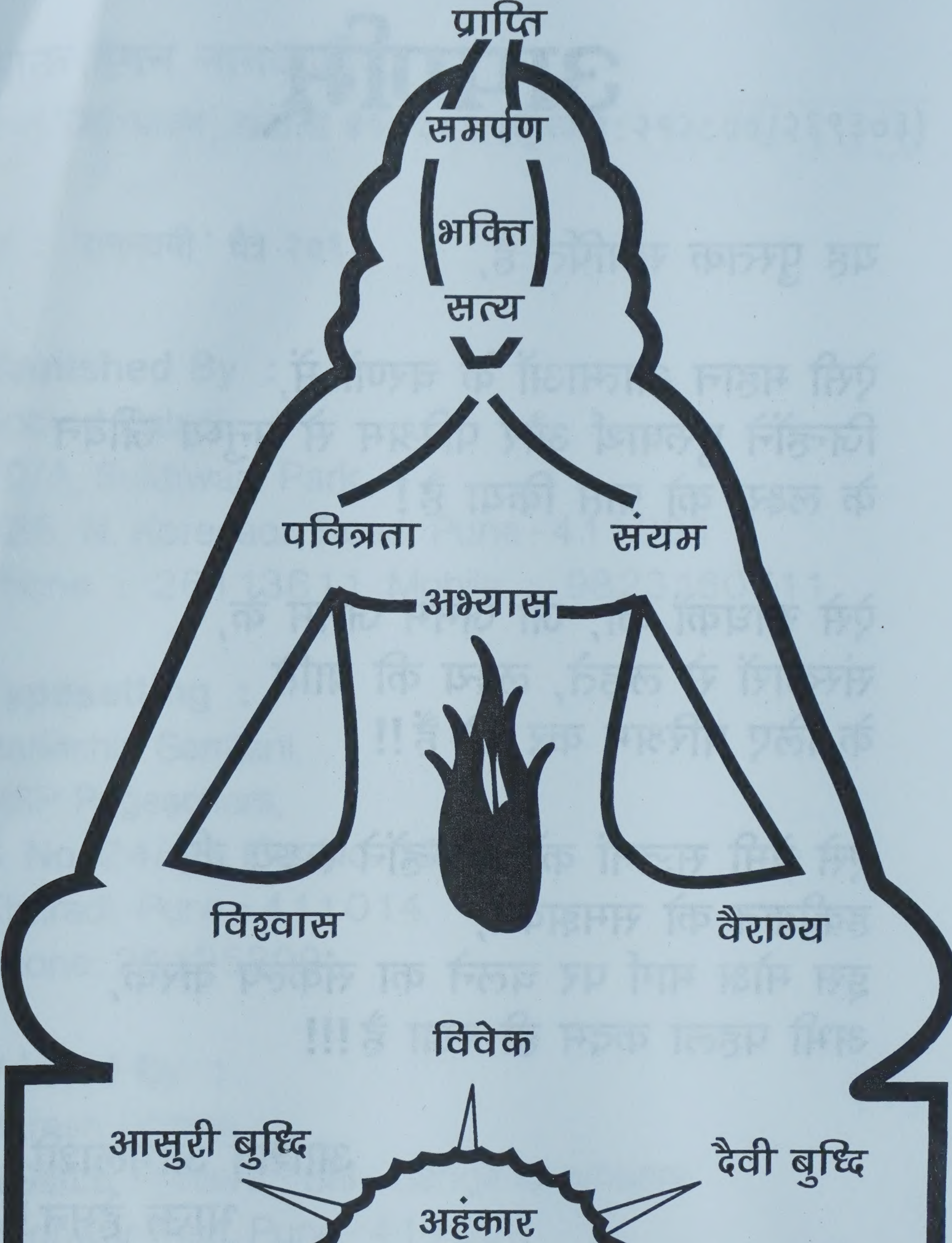
यह पुस्तक समर्पित है,

ऐसी महान आत्माओं के चरणों में,
जिन्होंने पुरुषार्थ और परिश्रम से मनुष्य जीवन
के लक्ष्य को प्राप्त किया है!

ऐसे साधकों को, जो जनम जनम के,
संस्कारों से लड़ते, लक्ष्य की प्राप्ति
के लिए परिश्रम कर रहे हैं!!

ऐसे प्रेमी सज्ञनों को, जिन्होंने लक्ष्य की
हक़ीकत को समझकर,
इस मोक्ष मार्ग पर चलने का संकल्प करके,
अभी पहला कदम ही रखा है!!!

आशिष अभिलाशी,
भाऊ हेमन!



बूंद समाई समुंद में – जाने सब कोई
समुंदु समाया बूंद में – बूझे विरला कोई

माँ हरी देवी वासवाणी का आशिर्वाद

कुछ महीने पहले, भाउ हेमन मुझसे मिलने आए थे। उनका शांत चहरा कैसा न चमक रहा था! मेरे साथ उन्होंने कोई भी संसारी वार्तालाप नहीं किया। मुख से जो भी अलौकिक शब्द निकले, उन से रूहानी ज्योत चमक रही थी।

भाउ हेमन की जो भी रचनाएं 'हिन्दवासी' पत्रिका में प्रकाशित होती हैं, उन्हें मैं बहुत उत्साह के साथ पढ़ती हूँ। हमारे इस भाई ने उन सब रचानाओं का संग्रह करके एक पुस्तक में बांध लिए हैं, जिसका शीर्षक है, ''**सागर समाया बूंद में।**'' भाउ हेमन ने मानो घागर में सागर भर दिया है और संक्षेप में कैसे न उन्होंने अनगिनत शिक्षांए भर दी हैं। उनका जीवन नाम के रंग में रंगा हुआ है, वे एक सचे भक्त हैं। उनके पास भक्ति के साथ साथ है ज्ञान! एक विद्वान और सचे कर्मयोगी हैं वे!

इस पुस्तक में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि, ''ऐ लोगो, अपने काम काज करते हुए, अपने फर्ज़ निभाते रहो। मगर अपनी दिल संसार को मत दो। दिल दो तो उस एक दिलबर को! उस मालिक को! एक साईं को! उस एक यार को, जो आपका सचा मित्र है! जो पग पग पर आपकी सहायता कर रहा है!''

इस समय चारों ओर जो वातावरण फैला हुआ है, उस में तनाव व अशांति है। जीव बेचारा क्रोध और अहम के प्रभाव में आकर अंधेरे में भटक रहा है। कोई तो चाहीए जो उनकी राह रोशन करे! ऐसे वातावरण में यह पुस्तक एक चमकते हुए दीपक की भांति है। जो कोई भी इस

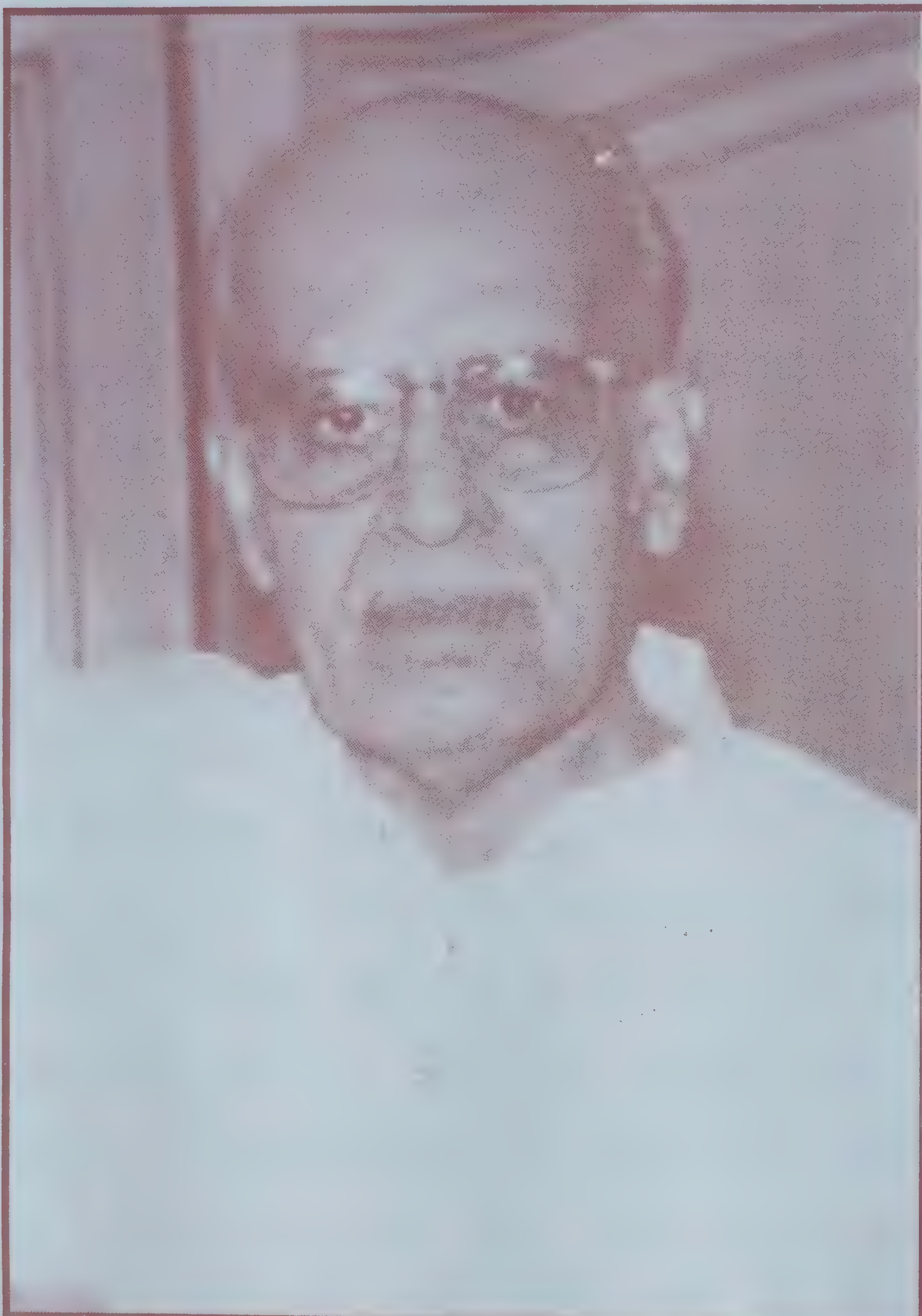
पुस्तक को दिल लगा कर अध्ययन करेगा, वह आनंद के सरोवर में डुबकियां लगाकर, लाल - रतन पायेगा। उनके कदम अध्यात्मिक मार्ग में बढ़ते रहेंगे और प्रभु - प्रेम की अभिलाषा के मस्ती की वृद्धि होती रहेगी

इस पुस्तक के लिए मैं भाउ हेमन को लाखों बधाईंयां देती हूँ। प्रभु के दर पर यही आराधना करती हूँ कि यह पुस्तक हर घर में पहुँचे और अपनी अलौकिक सुगंध फैलाता रहे। काश, अधिक से अधिक लोग इसे पढ़ें और उनकी दी हुई शिक्षा की साक्षी, अपने दैनिक जीवन में देते रहें। अपना जीवन सुखमय बनाकर सफल करें।

हरी. पी. वासवाणी

१०, साधू वासवाणी पथ,
पुणे - ४११००१

This Sacred Book is dedicated in Loving Memory of:



Shri Shyamdas H. Nanwani

By
Smt. Lila Nanwani (Wife)
Arjan & Anju
Umesh & Kiran

10A, School Row,
Bhowanipore,
KOLKATA - 700025
Phone : 24555673/24116100

रचनाओं के संग्रह का उद्देश्य.....

आज इस संसार में चारों ओर अशांति, असंतोष, दुःख, कष्ट, शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं का राज्य है। इतनी विशाल इस पृथ्वी पर कुछ ही गिने-चुने, निःरोग्यता और आनंद का रस लेते हैं। इसके मूल कारण की खोज कोई विरला ही करता है। आमतौर पर हर कोई बाहरी इलाज, दवा, जादू, टोना करके कुछ समय के लिए उस पीड़ा से राहत पाता है, परन्तु जड़ से इन पीड़ाओं का नाश नहीं हो पाता है। परमात्मा ने हमारे शरीर का ढांचा ऐसे कलात्मक ढंग से बनाया है कि हमारे प्रत्येक मन, वचन, कर्म का व्यवहार, हमारे रगों, नाड़ियों, हड्डियों और मांस पर छाप छोड़ता है। इस पूर्णतः बिगड़े वातावरण का मूल कारण मनुष्य का गलत व्यवहार, आचरण, आदतें और स्वभाव है। पर इस पर कौन विचार करता है?

मिली हुई सुख, संपत्ति और सामग्रीयों का कितना दुरुपयोग हो रहा है? मानव खुद पर से नियंत्रण खो बैठा है। उस सृजनहार की ओर से मिली हुई इच्छाओं की आज़ादी में भी कुछ नियमिक पाबंदियां हैं, जिन को अमल में लाने से हम जीवन का सच्चा सुख भोग सकते हैं। हम इस नश्वर शरीर के झूठे सुख और श्रृंगार के लिए जी-तोड़ कोशिश करते हैं। शरीर के रस भोगने के लिए धन का गलत उपयोग करते हैं। इंद्रियों के ऐशो-आराम के लिए अनुचित तरीक़े अपनाते हैं। नतीजे के तौर पर दुःख, रोग, मर्ज़ और मुसीबतें दामन में आ जाती हैं।

काश, कोई इस सचाई पर ग़ौर करे! मुनष्य अगर अपना

अपना आचरण और व्यवहार ठीक करे, मालिक की ओर से मिले ईश्वरीय गुणों का उपयोग करे, तो आज भी आनंद और परम सुख प्राप्त कर, मनुष्य जीवन का मूल उद्देश्य प्राप्त कर इस जीवन की यात्रा सफल कर सकता है।

.....यही अभिलाषा मन में धारण कर आत्म चिन्तन द्वारा जो प्रकाश प्राप्त हुआ है, उसी को ज़ाहिर करने का यत्न इस रचना संग्रह में किया गया है।

प्रेमी सज्ञनों का प्रेरणा भरा आदेश पाकर, समय-समय पर 'हिन्दवासी' में छपे लेख इकट्ठे किये गए और इस तीसरी पुस्तक 'सागर समाया बूंद में' प्रकाशित हो रहे हैं। इससे पहले दो पुस्तकें 'हो तुम ज्योत स्वरूप-अपना रूप पहचान' और 'बेहद का दिया जला तो घर में दिखे प्रकाश' हाथों हाथ खत्म हो गई। पहली पुस्तक का हिंदी अनुवाद प्यारे भाई गोप रूपचंदानी ने प्रेमपूर्वक किया था, वह भी जल्द ही खत्म हो गई।

प्रेमी सज्ञनों की सहायता मिलने से पुस्तक का मूल्य खर्च से भी कम रखा गया है। पाठकों से निवेदन है कि पुस्तक में कुछ त्रुटियां या विचार जो आपको सही न लगे, वह सब हमें निःसंकोच बताएं, तो हम आपके आभारी रहेंगे।

इस जगत से प्रीति रखने वाले जगत के जड़ पदार्थों के मालिक तो बन जाते हैं, पर अंत में वे भी छोड़ जाते हैं। परन्तु ईश्वर में प्रेम रखने वाले जड़ अथवा चेतन के मालिक बन कर भी, सदैव आनंद में लीन रहते हैं और अंत में स्वयं ईश्वर रूप बन जाते हैं।

विषय सूची

१. सफलता का रहस्य! १

२. रोना, जब एक कला बन जाती है! ७

३. क्या, मन की प्रसन्नता बाहरी हालात के अधीन है? १३

४. जन्म से थे मुक्त फंदे में फंसे अपने आप ही! १९

५. रूहानी बातें! २६

६. लगाकर डुबकी पाओ फल, असली नेत्र भीतर के खोल! २७

७. गुरू पूर्णिमा की महिमा! ३४

८. द्वापर युग का अवतार, प्रिय भगवन्! ४१

९. सीप का मोती! ४८

१०. ओ बंदे, भूली राह से लौट आ! ५५

११. कर्मों का खेत है यह, जो बोए सो पाए! ६०

१२. महात्मा सुक़रात! ६८

१३. कर्मों पर निर्धारित है यह खेत! ७५

१४. झूठी जगत की रचना ने – भुलाया रचनहार को! ८०

१५. बातें करे हर कोई, किसी किसी तन में है याद! ८७

१६. खोज, खोज कर पाओ ख़ज़ाना! ९४

१७. जाकी रही भावना जैसी – प्रभु सूरत तिन देखी तैसी! १०१

१८. जब तक है सांस शरीर में, तब तक करो भला! १०९

१९. छोड़ आश्रय सब का, ले राम की ओट, तो पापों भरे कोट, गिर जाएंगे ज़मीन पर! ११६

२०. पृथ्वी पापों के बोझ तले दब रही है! १२३

२१. प्रकृति का न्याय अटल है! १२९

२२. अरे रुको! आगे मत बढ़ो!! थोड़ा पीछे देखो! १३६

२३. ओ बंदे, पुरुषार्थ ही तुम्हारा धर्म है! १४५

२४. वासनाओं के वेग ने, डुबोया सारे जग को! १५२

२५. किसने डाला विघ्न आकर इस जहाँ में! १५८

२६. निज आनंद की प्राप्ति - सादगी और सचाई से होती है! १६५

२७. मरता मरता - जगु मुआ - मरि भी ना जानिया कोइ! ऐसी मरणी जो मरे, बहुर न मरणा होय! १७१

२८. आदर्शों और सिद्धांतो पर चलने वाला ही महान है! १९०

आभार

हम आभारी हैं अपनी बहन डॉ. सुनीता लालवाणी और श्री. हरकिशन सामताणी के, जिन्होंने बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ इस पुस्तक का अनुवाद किया है। और, आभारी हैं अपने मित्र डॉ. जगदीश अजवानी के जिन्होंने रात भर बैठ कर Proof Checking किया।

सफलता का रहस्य!

किसी प्रेमी ने एक महात्मा से अपनी अवस्था का वर्णन करते बताया कि, ''साधना करते बरसों बीत गए हैं। मैं बहुत ही पुकारता हूँ, गिड़गिड़ाता हूँ, प्रार्थना करता हूँ, पर इन सबके बावजूद अभी तक प्रभू के दर्शन नहीं हुए हैं। हे स्वामी! कुछ कृपा कीजिए, या शिक्षा प्रदान करें या फिर कोई ऐसा उपाय बताएं जिससे प्रभू मिल जाएं।''

महात्मा को इस प्रेमी के वार्तालाप से ऐसा लगा कि उसमें उतनी लगन नहीं है, जितनी बता रहा है। इसलिए, उसे यह अनुभव करवाना होगा कि किस उपाय से प्रभू मिलेंगे। वे उस प्रेमी का हाथ पकड़ कर बोले, ''पहले चलो तो नदी पर स्नान कर आते हैं, फिर तुम्हें प्रभू को पाने का साधन बता देंगे।

नदी पर जाकर दोनों पानी में कूद पड़े, और डुबकियां लगाने लगे। महात्मा ने डुबकी लगाते वक़्त उस प्रेमी का सिर अपने हाथों से पानी के अंदर दबा दिया। वह प्रेमी छटपटाने लगा, तो महात्मा ने अपना हाथ हटा दिया। जैसे ही महात्मा की पकड़ से वह प्रेमी आज़ाद हुआ, वह जोर-जोर से हाँफते हुए कहने लगा कि, ''एक क्षण और अंदर रहता तो प्राण खत्म हो जाते।''

महात्मा ने पूछा, ''क्या महसूस किया?'' उस प्रेमी ने उत्तर दिया कि, ''अंदर छटपटा रहा था कि बाहर निकलकर श्वास लूँ, नहीं तो प्राण निकल जाएंगे।

महात्मा बोले, ''बस! बच्चे, इसी तरह जब तुम्हारा संकल्प

सच्चा हो जाएगा कि प्रभू को प्राप्त करने के बिना तुम्हारे प्राण निकल जाऐंगे, तब प्रभू तत्काल आ तुम्हें दर्शन देंगे। तुम अपने संकल्प से सच्चे रहो तो तुम्हारा संकल्प ही सत्य में बदल जाएगा।''

मनुष्य चाहे तो क्या नहीं कर सकता है! जड़ संसार में भौतिकवाद की उन्नति में भी संकल्प की सच्चाई चाहिए। जग प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने संकल्प से ही अविष्कार करके आश्चर्यजनक उपकरण बनाए हैं। दिन-रात संकल्प की सच्चाई से ही वे सफलता प्राप्त करते हैं।

आध्यात्मिक मार्ग में भी संकल्प की सच्चाई चाहिए। दिखावटी तरीक़े बेशक इस संसार को प्रभावित करते हैं, फिर भी मन सफलता की मंज़िल से कोसों दूर रह जाता है। भक्ति हो या ज्ञान, योग हो या कर्म, अगर सच्चे संकल्प से प्रयोग किए जाएं, तो न सिर्फ मन पुलकित होता है, पर सफलता भी निश्चित प्राप्त होती है। हां! समय कितना लगेगा वह तो कर्म करने की गति पर निर्भर है।

एक यात्री तीर्थ करने पैदल निकल पड़ा। काफी रास्ता तय करने पश्चात वह थक कर, एक रास्ते के पत्थर पर, सांस लेने बैठ गया। कुछ समय उपरान्त एक फक़ीर वहाँ से गुज़र रहा था। यात्री ने उनसे पूछा, ''भाई, अमुक तीर्थस्थान पर पहुँचने में और कितना वक़्त लगेगा?' फक़ीर ने कोई उत्तर नहीं दिया। पुनः पूछने पर भी फक़ीर ने कोई जवाब नहीं दिया। इस पर वह क्रोधित हो कर तेज़ रफ्तार से चलने लगा। अब फक़ीर भी उसके आगे चलकर बोले, ''भाई, यदि तुम पहले उठकर चलते तो तुम्हारे चलने की रफ्तार को देख कर मैं तुम्हें बता सकता था कि कितना

समय लगेगा। अब तुम्हारी रफ्तार देख कर कह सकता हूँ कि एक घंटे में तुम मंदिर तक पहुँच जाओगे।''

इसी प्रकार किसी भी कार्य में संकल्प की सचाई तथा कार्य की सफलता की तीव्र इच्छा का होना अनिवार्य है। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा, ''साधारणतः संसारी जीव विषयों में सुख समझकर उनके लिए समस्त जीवन परिश्रम करते रहते हैं, परन्तु इन विषयों में ज़हर छिपा हुआ है। अंत में इन्हीं से दुःख, क्लेश और पीड़ा मनुष्य को प्राप्त होती है।

पर जिस योग, भक्ति या ज्ञान साधन से पहले दुःख मिलता है, अधिकतर संसारिक जीव उससे मुकरित होकर उसे छोड़ देते हैं। हालांकि उन साधनों में परम सुख, आनंद और अमृत का स्वाद मिलता है। इन साधनों के लिए आम आदमी संकल्प के कच्चे होते हैं, वे सिर्फ दिखावे का मार्ग चुनते हैं।

हमने देखा है कि पूजा, प्रार्थना, योग, अभ्यास व सत्संग आम इन्सान दिल से या मन लगाकर नहीं करते हैं। आज के इस कलयुग में यह सिर्फ दिखावट और मनोरंजन के साधन मात्र बन गए हैं। फिर भी ये साधारण मनुष्य के लिए अच्छे हैं, उनका कुछ समय तो सही मार्ग में व्यतीत होता है।

एक समय नारद मुनि, हरि नारायण का गुण-गान करते साधु के वेश में जा रहे थे कि एक वृद्ध साधु पर उनकी नज़र पड़ी। उन्होंने उसके पास जाकर कहा, ''भाई, मैं विष्णु लोक में जा रहा हूँ। भगवान के लिए कोई संदेशा हो तो कृपया कहो।'' वृद्ध साधु बोले, ''हाँ, भगवान से

यह विनती करना कि मैंने अपनी सारी उम्र योग अभ्यास में व्यतीत की है, पर उनके दर्शन नहीं प्राप्त हुए हैं। और कितना समय मुझे इंतज़ार करना होगा?''। नारद मुनि आगे बढ़े, तो थोड़ी ही दूरी पर उन्होंने एक तरुण सन्यासी को ध्यान में मग्न देखा। नारद मुनि उससे भी जाकर बोले, ''भाई, मैं विष्णु लोक में जा रहा हूँ। भगवान के लिए कोई संदेशा हो तो कृपया कहो।'' पर वह तरुण सन्यासी अपने ध्यान में मग्न रहा। कुछ समय पश्चात् नारद मुनि उसी राह से लौट रहे थे। पहले उस वृद्ध सन्यासी के पास जाकर उन्होंने उससे कहा, ''भगवान् ने कहा है कि तुम्हें और तीन जन्मों तक योग अभ्यास करने के बाद दर्शन मिलेगा।'' वृद्ध साधु के मुख से दुःखद आवाज़ में निकला, ''क्या भगवान के पास इंसाफ नहीं है? अब भी तीन जन्मों तक योग अभ्यास करना होगा?'' आगे चलकर उस तरुण सन्यासी को उन्होंने संदेश सुनाया कि, ''भगवान कहते हैं कि जिस वृक्ष के नीचे स्मरण कर रहे हो, उसके जितने पत्ते हैं, उतने जन्म लेने के बाद हमारे दर्शन होंगे।'' यह सुन वह सन्यासी खुशी के मारे नाचने लगा, ''आखिर दर्शन तो मिलेगा।''

जब तक संकल्प को पाने के लिए धैर्य और दृढ निश्चय नहीं है, तब तक सफलता कोसों दूर रहेगी। वह नौजवान सन्यासी तो नाचता रहा! नाचता रहा!! उसने तो खुद को भी भुला दिया! क्या इतना धैर्य और विश्वास कोई रख सकता है?

जीवन के हर पहलू को जब तक विशेष ध्यान और दर्जा नहीं दिया जाता, तब तक कर्म का उत्साह और जोश

पैदा नहीं होता।

गीता में भी कहा गया है, ''योग के परम पद तक पहुँचने की चाह रखने वाले मनुष्य को निष्काम भाव से कर्म करना है। उस अवस्था पर पहुँचने के बाद उस परम पद वाले योगी पुरुष के संकल्पों का भाव कल्याणकारी कहलाता है।''

साधारणत: लोग सत्संग में जाते हैं, सत्संग में महापुरुषों का वचन सुनते हैं। पूजा व प्रार्थना करते हैं। यह सब उनके लिए एक कर्म स्वरूप है। उनके मन में खींचातान है, अशांति है। मन परेशान है। इसलिए कोई लक्ष्य नहीं, संकल्प नहीं और फलत: उन्हें कोई विशेष लाभ नहीं मिलता है।

हमारे वेद शास्त्र कहते हैं कि यह पृथ्वी परमात्मा के संकल्प के सहारे ही टिकी हुई है। वैज्ञानिक खोज करते थक गए हैं। कुछ कहते हैं कि पृथ्वी पानी पर खड़ी है। अब सवाल यह उठता है कि पानी किस पर खड़ा है? इस तरह किसी ने भी अंत नहीं पाया।

संकल्प से ही मनुष्य हिमालय पर्वत की ऊंची शिखर पर अपनी सफलता की ध्वजा फहराते हैं। इस राह की कितनी भी रुकावटें, तकलीफें और जोखिम भी उनके संकल्प को हिला नहीं सकते हैं।

संसार में सब कुछ निश्चित समय पर ही मिलता है लेकिन आत्मा की प्राप्ति केवल संकल्प से ही संभव हो पाती है। आत्मा जो ईश्वर का एक हिस्सा है, अंश है, स्वयं ब्रह्म है, शंकाओं और समस्याओं के नीचे दबी हुई है, उसका साक्षात् स्वरूप सिर्फ संकल्प से ही देखा जा सकता है।

मनुष्य का जन्म भी कितना-सा है? दो सीमाओं के बीच, एक प्रसूतिगृह! दूसरा शम्शान! इसके बीच वाले हिस्से को जीवन कहा जाता है। मौत जो वास्तव में एक भ्रम है और इस भ्रम का हर किसी को डर रहता है। इसी लिए यह बीच वाला हिस्सा जिसे जीवन कहते है, वह भी डर, खौफ और भय में, बिना कुछ प्राप्त किए ही गुज़र जाता है। हर एक जीवन उस सत्य को पाने के लिए एक अमूल्य अवसर बन कर आता है। पर संसार के आकर्षण, मोह और ममता उसे भुला देते हैं। हक़ीकत यही है कि जीवन संकल्प से अपने आप को पाने का बेमिसाल मौका है।

परमात्मा की इस रहस्यमय रचना को शायद ही कोई समझ पाता है। जो समझता है, वही जीवन में अपने संकल्प से परमात्मा को पा लेता है। संकल्प की कला हर मनुष्य के अंदर छुपी हुई है। किसी भी रूप में उसका प्रयोग किया जा सकता है। भौतिकता या आध्यात्मिकता के लिए, किसी भी हासलात को, मनुष्य यतन करके सफलता प्राप्त कर सकता है।

भूल कर सारा संसार, फंसा अविद्या भ्रम में,
भूलकर विशेष ख़ज़ाना, बह गया संसार सागर में,
विरला कोई जागे, चढ़े अनुभव आकाश पर,
संकल्प से सर्व कठिन पथ लांघ कर,
प्रियतम पाया आप में।

ऐ मालिक, अपने बन्दों को सही राह पर चलने की शक्ति प्रदान करो!

रोना, जब एक कला बन जाती है!

परमात्मा ने इस सुंदर सृष्टि में मनुष्य को हंसने और रोने की ऐसी शानदार कला बख्श की है, जिससे अंदर के जज़्बात, दु:ख-दर्द, खुशियां, गम महसूस कर सकते हैं। अनुभवी व्यक्ति तुरन्त अंदाज़ा लगा सकता है कि यह हँसना या रोना असली है या नकली! अधिकतर ऐसा देखा गया है कि आम व्यक्ति नकली रोने या हँसने से तुरंत प्रभावित हो जाते हैं। ऐसे सामाजिक, गृहस्थ या व्यवहारिक जीवन में बहुत सारे लोग ठगे जाते हैं।

एक मारवाड़ी मित्र के घर में किसी की मृत्यु हुई थी। वहाँ एक कमरे में पुरुष और दूसरे कमरे में स्त्रियां एकत्रित हुईं थीं। उन स्त्रियों में से चार-पाँच स्त्रियां ज़ोर-ज़ोर से छाती पीट-पीट कर रो रही थीं। ऐसा लग रहा था कि शायद उनका कोई सगा-संबंधी मर गया हो। फिर उनका रोना और छाती पीटना एक समान, एक सुर में था। एक ही ताल में, एक से ही शब्दों से अपना शोक प्रकट कर रहीं थीं। एक ही वक़्त उनके हाथ अपनी छाती पीटने के लिए उठ रहे थे और एक ही वक़्त नीचे हो रहे थे। जिस प्रकार मिलिटरी वालों की परेड होती है। आखिर अर्थी उठने का समय आ गया। सब पुरुष बाहर निकले। वे औरतें जो ज़ोर-ज़ोर से रो-पीट रही थीं, बाहर आकर घर के एक सदस्य से पैसे ले रही थीं। कुछ सौ-सौ के नोट थे, कितने? पता नहीं! आश्चर्यचकित एक व्यक्ति ने मित्र से पूछा तो मालूम हुआ, कि ये औरतें पैसे लेकर रोने-

पीटने का काम करती हैं। और उन्हे ऐसे अवसर पर बुलाया जाता है। वह उनका रोज़गार बन चुका है। पेट भरने के लिए कुछ तो करना ही है ना!

आजकल के इस विषयी संसार में रोना भी असली नहीं है। दो-चार आँसू बहाए तो बहुत हो गया। बहुत से रिश्तेदार आते हैं पर असली रोना तो किसी को नहीं आता। इन भाड़ोत्री रुदालियों के रोने-पीटने ने तो सचमुच कमाल कर दिया। इस आधुनिक संसार में देखा जाए तो मनुष्य की हर क्रिया में नकल और बनावट शामिल हो रही है। वैसे तो सत्संग में या भगवान के लिए भी बहुत लोग रोते हैं, पर असली रोना तो शायद ही किसी का होता है।

संसार के लिए रोते हैं - पर सबका रोना बेकार है
रोना सफल है उनका - जिसमें प्रभू के लिए प्यार है।

एक जगह पर, एक पंडितजी भागवत की कथा कर रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद पास में रखा हुआ सफेद रूमाल उठाते और आँखों को लगाते तो आँखों से आँसूओं की धारा बहने लगती। उनकी इस क्रिया ने श्रोताओं को बहुत प्रभावित किया। वे बार-बार उठ कर भागवत के पास अपनी भेंटाएं रखते गए। एक नन्हा सा बालक, नौ वर्ष की आयु का, बहुत सयाना और समझदार, इस समस्त बातों को देखकर सोचने लगा कि शायद इस रूमाल में कोई जादू है जो वह लगाने से आँखों के आँसू पोंछता तो कम है, परन्तु इसके लगाने से ज्यादा ही बह निकलते हैं। वह आहिस्ते-आहिस्ते खिसक कर पंडितजी के पास आ बैठा। पंडित से नजर बचाकर उसने वह रूमाल उठाकर अपनी आँखों को लगाया तो उसकी आँखों में से भी झर-झर

आँसूओं की धारा बह निकली। यह देख कर सब आश्चर्यचकित हो गए, कि अब यह बालक भी पंडित के पास बैठने से रो रहा है। बालक सयाना था, उसने कुछ भी नहीं कहा। पर पंडित के चले जाने के बाद सब को पंडित की आँखों से आँसूओं के बहने का राज़ बताया कि, रूमाल में कोई दवा मिलाई गई थी, जिसके कारण आँखों को छूते ही आँसू बहने लगते थे।

ऊपर कही बातों से हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है। यह जीवन एक कला है। कलाकार जब अपनी कला का जौहर दिखाता है, तो उसे एक सफल कलाकार माना जाता है। इसी तरह ही मनुष्य संसार में रहे, पर संसार से अलग हो, तो उसका जीवन सफल बन सकता है। जिस प्रकार मौत पर उन औरतों का रोना एक कला थी, रोते वक़्त वे अंदर में ख़ुश हो रही होंगी कि उन की इस कला प्रदर्शन से उन्हे अधिक पैसे मिलेंगे। उनका वह रोना केवल बाहरी ही था। रोते वक़्त वे यह नहीं भूलतीं कि वास्तव में वे उस मृत्यु के संताप से निर्लिप्त हैं। ठीक उसी तरह ज्ञानी मनुष्य संसार के दुःख-दर्द होने पर भी अपने अंदर का आनंद सदैव कायम रखता है। वह सामान्य भाव से सांसारिक व्यवहार करता रहता है। वह मन, वचन और कर्म से हर कार्य करते हुए भी निर्लिप्त रहता है। वह सांसारिक होने के भ्रम से सदैव मुक्त रहता है, क्योंकि अंदर में जितना वैराग्य पैदा होगा उतना ही मोक्ष मार्ग के करीब होगा। इस संसार में वैराग्य वृत्ति के बिना संसार बंधन का कारण बन जाता है। हर तरह का व्यवहार करते हुए, मन की उदासीनता ही उस व्यक्ति के जीवन को मुक्त

रखती है।

एक माता अपने पड़ौस में आयोजित की गई भागवत की कथा हर रोज़ सुनने जाती थी। पंडित जैसे ही भागवत उठा कर, उसपर लिपटे रूमाल को खोलता था, तो उस माता की आँखों से आंसू आ जाते थे। पंडित को इस बात की ख़ुशी होती थी कि उसकी कथा के प्रभाव से इस माता की आँखों में आंसू आ जाते हैं। सात दिनों के बाद जब भागवत का पाठ समाप्त हुआ, तब पंडित ने ख़ुश होकर, उस माता के करीब जाकर, बधाई देते हुए कहा, ''माता, आप पर भागवत की कथा का बहुत अच्छा प्रभाव हुआ है। आप को इस कथा से क्या लाभ हुआ है? कौन सा ज्ञान प्राप्त हुआ है?'' माता ने जवाब दिया, ''पंडितजी महाराज! सच पूछें तो कथा में मेरा इतना ध्यान नहीं लगता था। भागवत के ऊपर लिपटे हुए रूमाल को देख कर, मुझे अपनी पोती की याद आती थी। क्योंकि जिस वक्त उसकी मृत्यु हुई थी उस वक्त उसने ऐसे ही कपड़े का फ्राक पहना हुआ था।'' यह सुन कर पंडित चारों खाने चित हो गए।

हमारे शास्त्र बताते हैं कि संसारी रोते समय आंसू आँखों के अंदर वाले ओर से, नाक को लगते हुए निकलते हैं, इसी लिए वे नमकीन होते हैं। परमात्मा के प्यार में रोते वक़्त आँखों के बाहर वाले ओर से, कानों की तरफ से होते हुए आंसू बहते हैं, और वे अश्रू मीठे होते हैं। परमात्मा ने रोने में भी कितनी सुंदर कला रखी है। संसारी रोने से हृदय जलता है और दुःखी होता है, परन्तु प्रभू प्रेम में हृदय शीतल और आनंदमय हो जाता है। मन में परम

सुख का अनुभव होता है। संसारी रोने से आँखें पीली और चेहरा जर्द हो जाता है लेकिन प्रभू प्यार में रोने से आँखे लाल और चहरा चमकने लगता है।

एक बहन पर केस चल रहा था। कोर्ट में उसे बयान दर्ज कराना था। उसने अपने देवर पर झूठा आरोप लगाया था कि उसने, उसके साथ बुरा व्यवहार किया है। वकील ने उसे अपने कक्ष में बिठा कर खूब अच्छी तरह से तैयार किया था कि उसे किस प्रकार रोकर बयान देना है। अगले दिन कोर्ट में उस बहन ने वैसे ही रोया और टूटे-फूटे शब्दों में बयान दर्ज करवाया, जिससे मैजिस्ट्रेट इतना प्रभावित हुआ कि वह केस जीत आई। आज रोने के तरीक़े में भी कितना नकलीपन और बनावट आ गई है। ऐसे समझदार और अनुभवी भी मुश्किल से मिलेंगे जो असली और नकली रोने को पहचान सकें या समझ सकें।

एक मित्र ने एक अजीब सी घटना सुनाई। ''एक सुबह वह अपने शयनकक्ष में सोया हुआ था। अभी सूर्योदय ही हुआ था। सूर्य की किरणें खिड़की से अंदर प्रवेश कर ही रही थीं कि बाहर से रोने की आवाज़ सुनाई दी। मम्मी के साथ कुछ महिलाएं रो कर बात कर रहीं थी। जल्द ही मुँह धोकर मैंने बाहर हॉल में आकर देखा कि चार अधेड़ उम्र की महिलाएं, सफेद कपड़ों में लिपटी हुई रो रहीं थी। मैने मम्मी से पूछा कि, ''क्या हुआ है?'' मम्मी ने बताया कि, ''उनके घर के किसी सदस्य का स्वर्गवास हो गया है। आजकल मृत्यु पर भी हज़ारों रुपये खर्च हो जाते हैं। यह उसी के लिए कुछ मदद माँगने आई हैं। तुम्हीं बताओ कि क्या किया जाए?'' स्वाभाविक ऐसी स्थिती

में दया भावना उत्पन्न हो ही जाती है। अभी कुछ सोच ही रहा था कि उन महिलाओं ने रोते हुए मेरी तरफ देखकर कहा, ''भैय्या, हम बहुत मुसीबत में हैं। अर्थी बनवाकर शम्शान तक ले जाने में दो हज़ार रुपये खर्च हो जाता है। आप लोग इस कठिन समय में हमारी मदद करेंगे तो भगवान आपका भला करेगा। आखिर मम्मी से सलाह करके उन्हें एक हज़ार रुपये दिये तो वे आशीष भरे शब्द कहकर बाहर निकल गईं। ज़रूरी कामों से निपट कर, स्नान करके करीब नौ बजे मैंने माँ से कहा कि नीचे कैलाश पर्वत से पकवान दाल खा कर आते हैं। होटल में आकर टेबल पर रखे दाल पकवान को खा रहा था कि पास वाली केबिन से महिलाओं के खिलखिलाने की आवाज़ सुनाई दी। आवाज़ कुछ पहचानी सी लगी। सोचा कि देखूं तो सही कि कौन-सी महिलाएं हैं जिनकी आवाज़ इतनी पहचानी सी लग रही है? आखिर जब ये महिलाएं बाहर आईं तो देखा कि ये वही चार औरतें थीं जो सुबह को रो कर मृतक के खर्च के लिए हम से पैसे लेकर गई थी। मैं तो अवाक् सा रह गया कि मैं उनका रोना सुनकर कैसे धोखा खा गया और ठगा गया।

आज मनुष्य की हर क्रिया में नकल और बनावट इस हद तक हावी हो गई है कि सच भी हार जाता है। कलयुग में सच का अकाल पड़ गया है।

जिस्म है झूठ से भरपूर, पाप के घोड़े की है तेज़ रफ्तार,
अपने मियां मिट्ठू बनने की खातिर, झूठ दिखावे का व्यवहार।
कलयुग में सत्य का अकाल है, झूठा बरताव है हर तरफ,
पापों की कालिमा में लिपटी हुई है, कपट का कचरा और दुर्गंध।

क्या, मन की प्रसन्नता बाहरी हालात के अधीन है?

मन की प्रसन्नता बाहरी हालातों पर निर्भर नहीं है। यह तो अपने ही पुरुषार्थ की बात है। जिस प्रकार मनुष्य हालात से समझौता करने की कला से ज्ञात है, उसी प्रकार खुशी और आनंद भी हर स्थिति में प्राप्त किया जा सकता है।

एक सज्जन ने एक ऐसे व्यक्ति की बात सुनाई, जिसने इस कला को जाना है।

'एक बार हरिद्वार जाना हुआ। वहीं किसी धर्मशाला की पहली मंज़िल के कमरे में रुका हुआ था। सुबह को अमृत - बेला के समय में जाग हुई। उठ कर गंगाजी पर स्नान के लिए चला गया। लौटते समय देखा कि एक भिखारी होठों पर मुरली ताने अत्यंत सुंदर मन - मोहक संगीत की धुन छेड़ रहा था। आसपास लोग जा रहे थे। उनके लिए शायद यह रोज़ की बात थी, पर मेरे लिए यह नई बात थी। पास जाकर मैं उस मधुर धुन का आनंद लेने लगा। पर जैसे ही मैं उसके नज़दीक गया, तो देखकर दंग रह गया। वह भिखारी, जिसकी बाईं बाँह और दाहिनी टांग कटी हुई थी, एक त्रिकोण लकड़ी के सहारे खड़ा होकर, एक हाथ से मुरली बजा रहा था। उसकी प्रसन्न मुद्रा देखकर हैरानी हुई। सुर की धुन अत्यंत मधुर और मन मोहने वाली थी। धीरे - धीरे वह धुन ज़ोर पकड़ने लगी और वह भिखारी लकड़ी को छोड़ एक टांग पर नाचने लगा। उसके चहरे पर छलकती प्रसन्नता बहने लगी। बहुत समय तक नाचते और धुन बजाते आखिर वह नज़दीक के चबूतरे पर बैठ गया। एक तरफ

तो उस भिखारी के संगीत और नृत्य से मन बहुत प्रभावित हुआ और दूसरी तरफ मन में दया भाव भी उत्पन्न हुआ कि इस बेचारे को सिर्फ एक हाथ और एक टांग है, वह जीवन कैसे व्यतीत करता होगा? यह सोचकर, चबूतरे पर उसके पास बैठकर मैंने हमदर्दी जताते हुए उससे उसकी प्रसन्नता का राज़ पूछा। अपनी आपबीती संक्षेप में बताते हुए उसने कहा, ''बाबूजी, मैंने भिखारी खानदान में जन्म लिया है। चलती ट्रेन में भीख मांगा करता था। एक बार पैर फिसलने के कारण मैं चलती गाड़ी के नीचे आ गया जिससे मेरी एक बांह और एक टांग कट गई। जब अस्पताल से बाहर निकला तो बहुत दु:खी हुआ। एक गायक को मुझ पर दया आई और उसने मुझे मुरली बजाना सिखाया। मुरली के संगीत में मैं इतना खो जाता हूँ कि मुझे अपना सारा दु:ख भी महसूस नहीं होता। इस तरह यह मुरली मेरी प्रसन्नता का राज़ बन गई। इस प्रसन्नता के आनंद में सुध-बुध भूल जाता हूँ और अपने आप यह शरीर नृत्य करने लगता है। बस, यूं ही जीवन के दिन आनंद से गुज़र रहे हैं। मुझे अपनी टांग और बांह खोने का कोई अफसोस नहीं है। यह भी ईश्वर की कृपा है कि मुझे इतना आनंद प्राप्त हुआ है। आप जैसे दानवीर मिलते हैं तो पूर्ण तृप्ति हो जाती है।''

उसका पूर्ण वृतान्त सुनकर मन में एक प्रश्न उठा कि, 'क्या प्रसन्नता बाहरी हालात के अधीन है? एक तरफ यह टूटा-फूटा मनुष्य भी अपने हाल में कितना खुश है! और दूसरी तरफ संपूर्ण अंगो वाले मनुष्य दु:खी हैं। आखिर इसका क्या रहस्य है?'

अपने ही अंदर से जवाब आया, ''भाग्यवान हैं वे लोग जो परिस्थिति से समझौता करके, प्रकृति द्वारा दिए हुए हालात को स्वीकारते हैं और हर हाल में खुश रहते हैं। जिन्हें कभी किसी हाल में भी कोई शोक या शिकायत नहीं होती। वे उन सब बातों से ऊंचा उठ कर, परिस्थिति को आत्मसमर्पण कर देते हैं।

हमारे जीवन की प्रसन्नता का आधार हमारी अपनी सहनशीलता, संतोष, सब्र और शांति आदि गुण हैं। जो मनुष्य संसार की परवाह न करते हुए, अपने में निर्लिप्त रहते हैं, वे ही जीवन के सच्चे आनंद के अधिकारी बनते हैं। जिस मनुष्य में हिम्मत और साहस है, आत्मविश्वास और ईश्वर में श्रद्धा है, वह मनुष्य संसार की किसी भी विपदा का सामना कर सफलता का ताज पहनता है।

ऐसा ही एक और उदाहरण है। एक बैंक में दो कर्मचारी स्कूटर पर चढ़कर काम पर जा रहे थे। कुदरत के कहर से रास्ते में उनका स्कूटर एक ट्रक के साथ टकरा गया। एक की एक टांग और दूसरे की दोनों टांगे कट गई। बैंक की तरफ से दोनों को यह सुविधा दी गई कि अगर वे बैंक में काम करेंगे तो बैंक का वाहन रोज़ उन्हें छोड़ने और लेने आया करेगा। बैंक के अंदर भी एक 'व्हील चेयर' (Wheel Chair) का प्रबंध किया जाएगा, अन्यथा काम छोड़ने पर उन्हें दो-दो लाख रुपये दिए जाऐंगे। जिस मित्र की एक टांग कटी थी, वह दो लाख रुपये लेकर नौकरी छोड़ कर चला गया और दूसरा जिसकी दोनों टांगें कटी थीं, उसने अपनी नौकरी चालू रखी। बैंक ने उसे हर प्रकार की सुविधा दी। उसने प्रकृति द्वारा की हुई घटना को स्वीकार

कर हिम्मत और साहस का दामन थामा। बैंक के अन्य कर्मचारी भी उससे बहुत प्यार करते थे। वह अपने काम को मन लगा कर करने लगा, इसलिए उसे पदोन्नति भी मिल गई। वह प्रसन्नमुद्रा में ग्राहकों से व्यवहार करता था। इस तरह उसके मन से अपनी टांगे खोने का गम भी दूर हो गया। दूसरी तरफ जो व्यक्ति पैसे लेकर नौकरी को छोड़ गया था, वह घर में अकेले बैठकर सुस्त और चिढ़चिढ़ा हो गया। उसकी ज़िंदगी उसके लिए बोझ बन गई।

अरे! सुख और दुःख तो अपने ही मन की कल्पनाएं हैं। संसार में सुख में सुखी तो हर कोई रहता है, लेकिन जब कोई इंसान दुःख में भी सुखी रहे, वही पूर्ण मनुष्य है।

सुख और दुःख मन की अवस्थाएं,
है ये किसने बनाई?
अपनी मनोभावना से हैं हम दुःखी,
मन की दशा किसे सुनाएं?

इसे ज्ञान कहें या आनंद! पर प्रचलित हालात से दबकर हम अपने आप को दुःखी कर रहे हैं। यह मनुष्य की बड़ी भूल है। प्रसन्नता तो अपनी खुद की सम्पत्ति है, जिसे मनुष्य प्रकृति से विरोध करने की गलती करके खो चुका है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो थोड़े में खुश रहते हैं, कुछ न होने पर भी प्रसन्नचित रहते हैं। पर अधिकतर ऐसे इंसान ज्यादा मिलेंगे जो संसार के सब सुख होने पर भी, अथाह दौलत होने पर भी दुःखी हैं। हर वक्त उनका चेहरा मायूस और दुःखी नज़र आता है। देखिए उस उपर वर्णित भिखारी को जो अपनी टांग और हाथ खोने पर भी कितना प्रसन्नचित

और आनंदित हो मुरली बजाकर नाच रहा था।

दो भाई किसी के घर जाकर पानी मांगने गए। दोनों को आधा-आधा गिलास पानी मिला। एक का चहरा मायूस हुआ कि सिर्फ आधा ही गिलास पानी मिला। मगर दूसरा प्रसन्नचित होकर कहने लगा, ''आधा ही सही, प्यास तो बुझेगी।''

यूरोप की एक स्त्री हेलन केलर कानों से बहरी, नेत्रहीन और गूंगी थी, परन्तु उसकी बुद्धि विशाल और विशेष थी। बचपन से उसने अपनी बुद्धि और अहसास की शक्ति से कमाल का काम लिया। हिम्मत और साहस के साथ परिश्रम किया। हाथों के स्पर्श और होठों की क्रिया से अक्षरों का उच्चारण करके अपने जीवन का रुख बदल दिया। उसे कितनी मेहनत करनी पड़ी होगी, ये तो वह खुद ही जानती होगी। उसने इतना ज्ञान प्राप्त किया कि तीन विषयों में ''डॉक्टोरेट'' की उपाधि हासिल की।

इस उदाहरण से यह प्रमाणित होता है कि हमारा ज्ञान भी इंद्रियों के अधीन नहीं है। हालांकि इंद्रियों के होते ज्ञान तो होगा ही, लेकिन किसी एक इंद्रिय में दोष होने पर भी अगर बुद्धि सलामत है, तो ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसे आत्मबोध कहते हैं। आत्मबोध होने से मनुष्य किसी भी अवस्था में प्रसन्नचित रहता है। जिस प्रकार सिनेमा के परदे पर जब तक चित्र रहता है तो हमें पर्दे का अहसास नहीं रहता सिर्फ पर्दे पर पड़ते हुए चित्र देखकर मन भ्रमित हो जाता है। लेकिन अचानक बिजली बंद हो जाने पर या किसी और कारणवश फिल्म बंद हो जाती है, तब हमें पर्दा साफ दिखाई देता है। इसी तरह जब मन रूपी पर्दे पर

से संसार का चित्र हट जाता है, तो उस समय मन शून्य अवस्था में आ जाने से, केवल आत्मबोध रूपी पर्दा नज़र आता है।

सारा दिन अक्सर मन कल्पित रहता है। मन में अनेक प्रकार के विचार चढ़ते उतरते हैं, जिससे मनुष्य का ज्ञान भी सांसारिक हो जाता है। दुःख और कष्ट की वजह से संतोष, धैर्य और प्रसन्नता ऐसे मनुष्यों से कोसों दूर रहती है। मानसिक अवस्था भी, प्रतिक्षण बदलती रहती है। दूसरी विशेष बात यह है, कि ऐसा मनुष्य स्वयं पर काबू नहीं पा सकता है। परिस्थिति अनुसार अपने आप को ढालना उसके लिए कठिन हो जाता है। जज़्बात और विचारों के बहाव में आकर वह बहक जाता है। परिणाम यह होता है कि हर वक्त दिमाग पर बोझ लेकर खुद को परेशान करता रहता है। मनुष्य का मन एक वक्त में एक खास काम कर सकता है। जब तक मन में कोई परेशानी या डर रहता है, मन प्रसन्न नहीं हो सकता, क्योंकि अनादि प्रकृति का नियम है कि दो बातें एक वक्त मन में नहीं समा सकतीं। समस्या या समाधान! गम या खुशी! डर या प्रसन्नता!!

परमात्मा ने यह सृष्टि आनंद भोगने के लिए रची है क्योंकि वह खुद भी आनंदस्वरूप है। आनंद से आनंद की उत्पति होती है। मनुष्य वास्तव में उस परम आनंद का ही एक अंश है।

जब एक अंगहीन भिखारी भी मौज-मस्ती में झूमकर नाच सकता है, तब दुनिया के अनेक पदार्थ हासिल किया हुआ, संपूर्ण अंगों वाला मनुष्य क्यों आनंद से वंचित है? भाग्यवान हैं वे लोग जो जीवन की परिस्थितियों से समझौता कर,

परिस्थिति अनुसार अपने आप को ढाल कर, हर हाल में प्रसन्न और संतुष्ट रहते हैं।

जन्म से थे मुक्त - फंदे में फंसे अपने आप ही!

१. दो तोते एक वृक्ष की टहनी पर बैठ आपस में बातें कर रहे थे। एक ने कहा, ''हमारे साथी कितने लालची हैं, जो थोड़े से दानों की लालच में फंस जाते हैं। हम तो आज़ाद पंछी हैं, जहाँ चाहें वहाँ जाकर पेट भरें।'' ऐसा कहते अचानक उन की नज़र सामने एक तालाब पर पड़ी। तालाब के पास एक पेड़ के नीचे एक बर्तन में मन लुभाने वाले दाने देखकर उसका मन ललचा गया। उसने अपने साथी से कहा, ''चलो चलकर सामने पेड़ के नीचे रखे बर्तन से दानें खा लें।'' उसके साथी ने कहा, ''प्यारे, यह धोखा है। उस तरफ मत जाना, फंस जाओगे।'' पर वह नहीं माना, और उड़कर उस बर्तन पर रखी एक नली पर बैठ गया। जैसे ही वह उस नली पर बैठा, नली उलटने लगी। उसे डर लगा कि बस, अभी पानी में डूब जाऊंगा। अपने पंजों से नली की पकड़ तेज़ की, तो वह खुद ही उलटा हो गया। अब उसे यह भ्रम हुआ कि अगर अपनी पकड़ ढीली करता हूँ, तो पानी में गिरकर डूब जाऊंगा। यह सोचकर उसने नली पर अपनी पकड़ और मज़बूत कर दी, और उल्टा ही लटका रहा। इतने में एक शिकारी आया और उसे हाथों से पकड़ कर पिंजरे में डाल

दिया। पेड़ पर बैठा उसका साथी यह सब दृश्य देख रहा था। दया भाव से भरकर कहने लगा, ''था तो यह मुक्त - फंदे में फंसा अपने आप ही!''

२. जंगल में बंदर बड़ी मौज से नाच - कूद कर यहाँ वहाँ घूम कर आनंद ले रहे थे। मौज में आकर पेड़ों से फल - फूल तोड़कर पेट भर रहे थे। अचानक एक बंदर जो पेड़ पर बैठा था, उसने नीचे ज़मीन पर भांति - भांति के खाद्य पदार्थ देखे! उसका मन ललचाया। बंदरों के सरदार ने चीख कर कहा, ''नीचे मत उतरना, फंस जाओगे!'' पर उसने लालच में फंसकर, सरदार की सलाह नहीं मानी और नीचे उतर गया। ज़मीन पर एक छोटे मुँह वाला मटका पड़ा था। अंदर चने, मुंगफली, और भी अन्य पदार्थ दिखाई दिये। आगे आकर उसमें हाथ डाला और मुट्ठी भर कर बाहर निकालने लगा। पहले खाली हाथ तो आसानी से अंदर चला गया था। पर अब भरी हुई मुट्ठी से हाथ नहीं निकल पा रहा था। बंदर हाँफने लगा। डर में उसे ऐसा लगा, जैसे किसी ने उसका हाथ पकड़ रखा है। पर मुट्ठी नहीं खोल रहा था। ऐसे कितनी ही देर डर के मारे वह दुविधा में बैठा रहा। दूर से कुछ लोग लाठियां और बंदूकें लिए चले आ रहे थे। पेड़ पर बैठे सब बंदर भाग गए। उनका सरदार पेड़ पर बैठा सब कुछ देख रहा था। लोगों ने लाठियों से मटके का मुँह तोड़ दिया और बंदर को रस्सियों से जकड़ लिया। बंदरों का सरदार यह देखकर अफसोस के साथ मन ही मन में कहने लगा, ''अब यह गुलाम बन कर दर - दर भटकेगा, मार खाएगा, ईशारों

पर रोटी के लिए नाचेगा। 'था तो यह मुक्त-फंदे में फंसा अपने आप ही!''

३. तालाब के तट पर कमल के सुंदर फूल खिले थे। चारों ओर बहार ही बहार और मनमोहक वातावरण था। अचानक एक भंवरा उड़ता आया और कमल के फूल के आसपास मंडराने लगा। चारों ओर से परिक्रमा देकर सुगंध लेता रहा और रस चूसता रहा मगर उसका मन नहीं भरा। एक खुले हुए कमल के फूल के अंदर बैठ कर आनंद लेने लगा। आनंद लेते लेते इतना खो गया कि उसे समय का ध्यान ही नहीं रहा। शाम हुई, सूर्यास्त होने लगा। कमल का फूल भी आहिस्ते आहिस्ते बंद होने लगा। प्रकृति के नियमानुसार कमल का फूल अपने आप में समेट कर बंद हो गया। अंदर भंवर की सांस फूलने लगी। और अंत में उसकी सांस बंद हो गई। दूसरे दिन सूर्योदय होते ही कमल का फूल खिलने लगा तो अंदर से भंवरे की लाश से यह आवाज़ आई, ''था तो मैं मुक्त-फंदे में फंसा अपने आप ही!''

४. अंधेरी काली रात थी। ऐसे अंधेरे में एक दीपक जगमगाया और उसकी रोशनी चारों ओर फैल गई। न जाने कहाँ से एक पतंगा आकर उजाले में झूमने लगा और शमा के चारों ओर परिक्रमा करने लगा। इतने पर उसकी तृप्ति नहीं हुई। अब वह शोले को छूने का प्रयत्न करने लगा। ऐसे ही मस्ती में झूमते हुए उसने अपने पंख जला दिए। अब वह धड़ाम से ज़मीन पर जा गिरा। बेबसी से अपनी जान दे दी। दीपक को अफसोस हुआ और दुःखी होकर बोला, ''बिचारा था तो मुक्त, पर

फंदे में फंसा अपने आप ही!''

५. वन का सुंदर दृश्य था। चारों ओर सुगंधित पौधे, फलों और फूलों से लदे वृक्ष प्रकृति की सुंदरता को बढ़ा रहे थे। ऐसे सुंदर वातावरण में हिरणों की एक टोली नाच-नाच कर आनंद ले रही थी। आपस में खेल-कूद करने में मस्त थे। न जाने कहाँ से उस रंगीन वातावरण में बांसुरी की मधुर आवाज़ फैल गई। एक तो अति सुंदर मनमोहक वातावरण, उस पर दिल लुभाने वाला संगीत सुन हिरणों की सुध-बुध खो गई। यहाँ वहाँ देखने लगे। संगीत की धुन के वशीभूत होकर वे पेड़ों-पौधों में तलाश करते उस सुर की धुन की तरफ खींचते चले गए और नज़दीक होते गए फंदे की तरफ! चलते चलते उनके पांव ज़मीन पर बिछी रस्सी के फंदे में फंस गए। फिर भी संगीत की तान पर झूमते रहे। आखिर, स्वर बंद हो गया। कान रस का नशा टूटा, तो अपने आप को फंदे में फंसा देख छटपटाने लगे। मगर अब तो उनको फंसाने वाले अपनी और भी रस्सियां लाकर एक-एक को रस्सी में बांध कर खींच कर ले गए। वन के पेड़ों से हवा के एक तेज झोंके से आवाज़ आई, ''थे तो यह मुक्त-फंदे में फंसे अपने आप ही!''

६. पानी की लहरों में मछलियां लहरा रही थी। ऊपर-नीचे डुबकी लगाकर आनंद मना रही थी। एक मछली ने सामने एक धागे में बंधे खाद्य पदार्थ को देखा और दूसरी मछली से कहा, ''आज हमें अच्छा भोजन मिल रहा है। देखो तो सामने धागे पर कितना अच्छा खाद्य पदार्थ लटक रहा है। मेरे मुँह में तो पानी आ रहा है।''

उसकी सहेली अनुभवी और समझदार थी। उसने कहा, ''सयानी बनो और मेरा कहा मानों, यह धोखा है। उसे खाने मत जाना, फंस जाओगी।'' मगर वह तो उस खाने पर अपना दिल हार चुकी थी। आगे बढ़कर जैसे ही उसने मुँह खोला तो खाने में छुपा लोहे का कड़ा उसके मुँह में फंस गया। अब तो वह बेबस हो कर छटपटाने लगी। पर उस फंदे से छूट न सकी। उसकी सहेली बहुत दु:खी हुई और अत्यंत दु:खी हृदय से बोली, ''थी तो यह मुक्त - फंदे में फंसी अपने आप ही!''

७. सुंदर वन में एक हाथियों का समूह बहुत मौज से खड़ा था। एक दूसरे के साथ खेल - कूद कर अपना दिल बहला रहे थे। अजीब - सा दृश्य था। वन में इस तरह हाथियों का खेलना, वन की शोभा बढ़ा रहा था। ऐसे में आगे चलते हुए, एक हाथी की निगाह दूर खड़ी एक हाथिन पर पड़ी। काम का घातक तीर उस के हृदय में धँस गया। तेज कदम उठाता वह उसकी तरफ बढ़ने लगा। एक वृद्ध हाथी ने उसे सावधान करते हुए कहा, ''आगे मत बढ़ो, यह धोखा है, आगे बढ़े तो फंस जाओगे।'' परन्तु वह कामातुर हाथी सुनी - अनसुनी कर आगे बढ़ता गया। जैसे ही वह उस बनावटी हाथिन के करीब पहुँचा, वैसें ही धड़ाम से घाँस - फूँस से ढँके हुए बड़े खड्डे में जा गिरा, जहाँ से बाहर निकल नहीं पाया। हाथियों को फंसाने के लिए लोग मोटी - मोटी रसियां ले आए। ज़ंज़ीरों में जकड़ कर उस हाथी को कैद कर ले गए। उस वृद्ध हाथी के मुख से यह शब्द निकले, ''था तो यह मुक्त - फंदे में फंसा अपने आप ही।''

८. एक योगीराज एक वन में तपस्या करता था। एक घाँस-फूँस से बनी कुटिया में रहता था। पड़ोस के गांववासी अक्सर योगीराज के पास आकर उनसे आशीर्वाद लिया करते थे। एक दिन योगीराज ने अपने शिष्यों से कहा, ''भाई, यहाँ बहुत चूहे हैं। मेरी सारी लंगोटियों में छेद कर गए हैं। उनका कोई उपाय करना होगा।'' एक शिष्य ने कहा, ''महाराज, एक बिल्ली पालनी होगी, फिर एक भी चूहा नहीं रहेगा।'' योगीराज को बात पसंद आई और एक बिल्ली का प्रबंध किया गया। एक शिष्य जो रोज़ महाराज के लिए दूध लाया करता था, वह बिल्ली के लिए भी दूध लाने लगा। एक बार बारिश के कारण वह शिष्य आ नहीं पाया, इसलिए दूध भी नहीं आया। इस पर योगीराज नाराज हुए। एक शिष्य ने उनको प्रसन्न करने के लिए कहा, ''योगीराज, अगर आज्ञा हो तो यहाँ पर एक गाय रख लें, फिर कभी दूध से वंचित नहीं होना पड़ेगा।'' गाय लाई गई और शिष्य रोज़ घास आदि लाकर गाय की सेवा भी करते और दूध भी दुह लेते थे। फिर एक दिन अचानक ज़ोर की आँधी और तूफान आया। खूब बारिश पड़ने की वजह से शिष्य दो-चार दिन नहीं आ पाए। बिल्ली भी भूखी रही और गाय भी। योगीराज फिर बहुत दुःखी हुए। अगले दिन शिष्य आए तो पूरी वारदात को ध्यान में रख कर उन्होंने फैसला किया कि पास में एक छोटा सा खेत खरीदा जाए। खेत से कुछ उपज भी होगी और गाय के लिए घास और कुटिया के लिए अन्न-धान भी मिलेगा। इस फैसले पर अमल भी किया गया। योगीराज के काम बढ़

गए। अब इतना सारा काम कौन करे? सुबह-शाम शिष्य आते। शाम को भजन-कीर्तन पश्चात् सब घर लौट जाते। अब बिल्ली को समय पर दूध देना, गाय को चारा डालना, खेत की देख-भाल करना, योगीराज तो इन कामों में उलझ कर रह गया। उसने अपने शिष्यों से इस दुविधा का ज़िक्र किया। एक शिष्य ने सलाह दी, ''योगीराज, एक विनती कबूल करिये। गांव की किसी ऐसी कन्या से विवाह कर लीजिए, जो आपके सब काम संभालेगी और आपकी सेवा भी करेगी। आप तो परोपकारी हैं। आपके लिए जैसा ब्रह्मचर्य वैसा ही गृहस्थ। आप तो निर्लेप हैं। आपको कोई फर्क नहीं पड़ेगा। योगीराज शिष्यों की बातों में फंस गया। गांव की एक कन्या से उनका विवाह हुआ। अब तो बेचारे महाजाल में फंस गए। तीन-चार वर्षों में दो बच्चे भी पैदा हो गए। योगीराज अब भोगीराज बन गया। वर्षों बाद उनका एक गुरूभाई आ पहुँचा। अपने गुरूभाई को इस तरह फंसा देख उसके मुख से यह शब्द निकल गया, ''था तो यह मुक्त-फंदे में फंसा अपने आप ही।'' एक लंगोट की वजह से इस मायाजाल में फंस गया। उनका जप, तप, संयम, योग अभ्यास सब छूट गया। वाह माया, तुम्हारे रंग! सच तो यही है कि यह जीव स्वतंत्र होते हुए भी थोड़ी सी लालच में फंसकर अपना पूरा जीवन बरबाद करके, खुद को फंदे में फंसा देता है और माया की जकड़ में अपनी पूरी ज़िंदगी व्यतीत करता है।

उसी को इंसान कहो!

जो औरों का भला करे, उसीको इंसान कहो!
पराया दु:ख जो अपना समझे, उसीको इंसान कहो।

१. है यह दुनिया एक उलझन, कहीं धोखा कहीं ठोकर,
कोई जीए मौजों में, है कहीं सिर्फ रोदन,
मुश्किलों में जो ना घबराए, उसीको इंसान कहो।

२. धन के हैं भंडार कहीं, कहीं ग़रीबी तड़पाए,
सुख के कई साधन कहीं, कहीं गम के बादल छाए,
रहे जो सुख और दु:ख में समान, उसी को इंसान कहो।

३. अनेक प्रकार के भोजन, ठूस-ठूँस पेट भर खाए कोई,
पशु, पक्षी और जानवर सा, जीवन व्यर्थ गंवाए कोई,
जो करे सेवा तन, मन, धन से, उसी को इंसान कहो।

मत फंसो किसी उलझन में!

मिला है तुम्हें मानव जनम, खुले हैं पूर्व जनम के कर्म,
मत फंस किसी उलझन में बंदे, समय न गंवा व्यर्थ में बंदे।

१. लाखों हज़ारों जीते हैं, पर जीवन धन्य है उनका,
नाम प्रभू का गाते हुए, द्वार प्रभू के जाते हैं,
गा प्रभू का नाम प्यारे, कर पल-पल प्रभू का ध्यान प्यारे,
मत फंस किसी उलझन में बंदे, समय न गंवा व्यर्थ में बंदे।

२. चार दिनों का है यह खेल, छोटा सा है जग का मेल,
है झूठी जग की प्रीत, ईश्वर ही है सब का मीत,
जो ले शरण प्रभु की, वो तोड़े माया के सब फंदे,
मत फंस किसी उलझन में बंदे, समय न गंवा व्यर्थ में बंदे।

नेकी कमा जगत में!

प्रभू मांगेगे हिसाब, नेकी कमा जगत में,
देना पड़ेगा जवाब, नेकी कमा जगत में।

१. झुक जाएंगी निगाहें, मालिक के दरबार में,
जिस दिन खुलेगी किताब, नेकी कमा जगत में।

२. और कुछ बन या ना बन, इस ज़िदंगी में,
पर इंसान बन लाजवाब, नेकी कमा जगत में।

३. नफरत की गंदगी से, भरा हुआ है जहान,
महका फूल प्यार के, नेकी कमा जगत में।

४. अकड़ के यूं ना चल, कदम उठा सोच समझ कर,
दो दिन का है यह शबाब, नेकी कमा जगत में।

५. ख्वाबों का है महल ये दुनिया, दिल ना लगा इस से,
हो जाओगे गायब एक दिन, नेकी कमा जगत में।

लगाकर डुबकी पाओ फल – असली नेत्र भीतर के खोल!

महाराज अधिराज के पास पूवर्जों के ऐसे अमूल्य खज़ाने थे, जो कि हर दीवाली पर महल के सुंदर हॉल में सजाकर रखे जाते थे, ताकि शहर की प्रजा इस सम्पत्ति को देखकर निहाल हो जाए। प्रजा भी इस खज़ाने को देखकर बहुत खुश हुआ करती थी, और राजा को दुआएं दे जाती थी। बहुत वर्षों तक यह सिलसिला चलता रहा। राजा की उम्र बढ़ चुकी थी। अब राजा के मन में यह विचार आया कि

इस खज़ाने का मूल्यांकन किया जाए। अपने मंत्री की राय लेकर शहर के जौहरी बुलाए गए। उन जौहरियों को मोतियों, माणिकों, लालों की परख करने का काफी अनुभव था। बहुत दिनों की जाँच और परख करने के पश्चात् जौहरियों ने एक मत हो कर सारे खज़ाने का मूल्य बताया। पर एक ऐसा हीरा था जिसका मूल्य वे नहीं लगा पा रहे थे। उन्होंने अपनी विवशता बताते हुए कहा, ''इस हीरे का मूल्य करना हमारे बस की बात नहीं है।'' उन्होंने एक तरीक़ा बताया, ''शहर में एक सौ वर्ष उम्र वाला एक वृद्ध जौहरी रहता है, वह इस हीरे का मूल्य बता सकता है।'' राजा का आदेश पाकर उस बूढ़े जौहरी को पालकी में बिठाकर महल में लाने का प्रबंध किया गया। राजा ने उसका स्वागत किया और उसे बुलाने का कारण बताया। उस बूढ़े जौहरी ने हीरा देखकर कहा, ''इस हीरे की परख करनी है तो मुश्किल, मगर कुछ आवश्यक वस्तुओं के मिलने पर संभव हो सकता है। राजा ने उन्हें आश्वासन दिया कि जो भी वस्तु आप आवश्यक समझें, वह आपके लिए लाई जाएगी। उस पर उस वृद्ध जौहरी ने कहा, ''एक सौ चांदी की छोटी कटोरियों में बिलकुल स्वच्छ जल और एक शमादान लाया जाए।'' तुरन्त उस हुक्म की तामील की गई। पारखी जौहरी ने सौ प्यालियां पानी से भर कर गोल आकार में रखीं। उन के बीच में थोड़ी सी ऊंचाई पर वह हीरा रखा गया। ऊपर से शमादान जला कर पकड़ा गया तो हीरे की परछाईं नीचे रखी हुई पानी से भरी कटोरियों पर पड़ी। वृद्ध जौहरी ने कहा, ''अब हीरे के एक-एक तरफ की परछाईं की जाँच करो। इस हीरे के कुल मिलाकर एक सौ तरफ हैं, निन्यानवे

अक्स तो बिलकुल साफ हैं पर एक तरफ हलका सा दाग़ है, इसलिए इस हीरे का मूल्य निन्यानवे लाख रुपए है।''

राजा इस वृद्ध जौहरी के परख करने के तरीक़े से और उसके अनुभव से बहुत प्रभावित हुआ। उन्होंने मन ही मन सोचा कि इसे इनाम भी वैसा ही देना चाहिए। उन्होंने अपने मंत्री से सलाह की तो वह सोच में पड़ गया। हाथ जोड़ कर उसने विनती की, ''जहाँपनाह! गुस्ताखी माफ हो तो इनाम के बारे में कुछ कहूँ।'' राजा ने कहा, ''बेधड़क कहो'' मंत्री बोले, ''महाराज, इस जौहरी की उम्र सौ वर्ष है। उसने अपनी सारी उम्र पत्थरों को परखने में ही गंवाई है और आज भी पत्थरों की ही पहचान कर रहा है। इस लिए इसे सौ जूते मारने चाहिए।'' यह सुन कर राजा बहुत दुःखी हुए। मंत्री को डाँटते हुए बोले, ''आप जानते हो कि आप क्या कह रहे हो? कुछ होश की बातें किया करो।'' मंत्री बोला, ''महाराज, परमात्मा ने उसे इतनी विशाल बुद्धि दी है, जो सारी की सारी उसने पत्थरों की पहचान करने में गुज़ार दी है। यदि बुद्धि से आत्मा की पहचान करता तो अवश्य परमात्मा को पा कर अपना जीवन सफल कर सकता था।''

''पागल हैं वे, जो अपने आप को नहीं पहचानते''

परमात्मा ने मनुष्य जीवन में जो बुद्धि दी है, वह दर असल ईश्वर का ही अंश है। उस बुद्धि द्वारा मनुष्य अभ्यास करके महान और पूज्यनीय बन जाता है। यहाँ तक कि परमात्मा को भी खोज निकालता है। परन्तु अधिकांश मनुष्य अपनी बुद्धि को गलत रास्ते पर, विषयों-विकारों में, भोग पदार्थों को भोगने में व्यतीत कर देते हैं, जिस वजह से

बार-बार हर जन्म में, किस्मत की ठोकरें खाकर, संसार के थपेड़े खाकर, दु:खी होकर परलोक सिधारते हैं।

एक जौहरी घोड़े पर सवार हो जंगल में सैर कर रहा था। सामने से एक बकरी पालने वाला अपनी बकरियां ले जा रहा था। अचानक उस जौहरी की नज़र एक बकरी के गले में बंधे हुए पत्थर पर पड़ी। पास जाकर उसने देखा तो वह पत्थर बहुत मूल्यवान था। बकरियां पालने वाले को पास बुलाकर कहा, ''यह पत्थर जो बकरी के गले में बंधा हुआ है, मुझे दोगे?'' बकरियां पालने वाले ने कहा, ''इस मामूली से पत्थर में आपने क्या देखा है?'' तब वह जौहरी बोला, ''भाई, यह मेरा काम है। मुझे यह पत्थर दोगे तो मैं तुम्हें पैसे दूंगा।'' बकरी पालने वाला बहुत खुश हुआ, ''भाई यह तो मुझे जंगल में पड़ा मिला था। अच्छा कितने पैसे दोगे?'' जौहरी उसे पाँच रुपए देकर, पत्थर बकरी के गले से उतारकर चलता बना। पत्थर लेकर बहुत खुश हो रहा था कि हज़ारों का यह पत्थर मूर्ख बकरीवाला अपनी बकरी के गले में बांधे फिर रहा था। उस मूर्ख को क्या पता, वह तो पाँच रुपए पाकर खुश हो गया। जौहरी ने घर में आकर, एक सुंदर सी अलमारी बनवाई और पत्थर संभाल कर रख दिया। हर रोज़ पत्थर को देखकर बहुत खुश हुआ करता था। अचानक एक दिन उसने देखा कि वह पत्थर एक ओर से टूट गया है। बहुत दु:खी हुआ। अब तो उस पत्थर की वह कीमत नहीं रही। दु:खी होकर उसने पत्थर से पूछा, ''प्यारे, बकरी के गले में तो संपूर्ण थे, यहाँ पर तो मैंने तुम्हें शानदार अलमारी में रखा है, फिर भी तुमने अपना मूल्य क्यों कम कर दिया।''

तब वह पत्थर बोला, ''प्यारे, वह बकरीवाला तो मूर्ख था! उसे मेरे मूल्य का पता नहीं था। मगर तुम तो पारखी हो, तुम्हें तो मालूम था कि मेरा क्या मूल्य होना चाहिए? फिर भी तुमनें मेरा मूल्य सिर्फ पाँच रुपए किया! जानकर भी तुमने मेरा मूल्य कम कर दिया, तो में संपूर्ण कैसे रहता?''

इसी तरह आज मनुष्य अद्‌भुत शक्तियों का मालिक होते हुए भी कंगालों की तरह दर-दर की ठोकरें खा रहा है। मानवता का मूल्य कोई नहीं जानता। मूर्ख और पागलों जैसे, मनुष्य ने बकरी के गले में टांगे हुए पत्थर की तरह, अपना सही मूल्य कम कर दिया है।

पत्थर बनकर रहो पथ का, त्याग मन का अभिमान,
हो ऐसा कोई दास, जो पाए भगवान!
पत्थर न बन ऐसा, जो राह चलतों को दुखाए,
ऐसा दास बन जा, जो खुद को मिट्टी बनाए!
मिट्टी न बन ऐसी, जो अंगो को मैला कर दे,
ऐसा दास बन जा, जो खुद को जल में बहाए!
जल न बन ऐसा, कभी गरम कभी सर्द,
ऐसा दास बन जा, जो खुद हो सच्चिदानंद!

मानवता के मूल्य की, पत्थर की परख से तुलना की जा सकती है। पूरा जीवन मनुष्य यूं ही व्यतीत कर रहा है। महापुरुष दया करते हैं, करुणा करते हैं, राह दिखाते हैं, फिर भी आँखों से खून के आँसू बहाते हैं कि आज मनुष्य ने अपना मूल्य पत्थरों जैसा कर दिया है। मनुष्य ने अपना असली मूल्य क्यों भुला दिया है?

हल जोतते किसान को खेत में से एक घड़ा मिला, जो

लाल चमकदार पत्थरों से भरा हुआ था। किसान घड़ा देख कर बहुत खुश हुआ। मन में सोचने लगा, 'अब रोज-रोज पैदल नदी के किनारे पर पत्थर चुनने नहीं जाना पड़ेगा।' बहुत दिनों तक, दो पत्थर गुलेल में डालकर, पक्षियों को उड़ाने लगा। उसे इस बात से खुशी मिलती थी। बस, यूं ही घड़ा खाली भी होने लगा। अचानक एक दिन एक यात्री उस खेत से गुज़र रहा था। इस यात्री को पत्थरों की पहचान थी। उस किसान के हाथ में, गुलेल में काम आता पत्थर देख कर वह हैरान हो गया। उसका हाथ रोक कर उसने कहा, ''भाई, यह पत्थर तो दिखाओ।'' हाथ में लेकर और देखकर उसने पूछा, ''ऐसे और भी पत्थर हैं तुम्हारे पास?'' जवाब में किसान ने कहा, ''बस, दो-चार पत्थर ही शेष रह गए हैं। वैसे तो घड़ा इन पत्थरों से भरा हुआ था, पर रोज़ दो चार पत्थर गुलेल में डालकर पक्षियों को उड़ाता रहा हूँ।'' यात्री ने अफसोस जताते हुए कहा, ''बालक, अज्ञानवश तुमने अमूल्य खज़ाना व्यर्थ में लुटा दिया है। अब बाज़ार जाकर इन पत्थरों का मूल्यांकन करा लाओ, तो तुम्हें पता चलेगा।'' किसान पत्थर लेकर जौहरी के दुकान पर पहुँचा। जौहरी ने सोचा कि इस मूर्ख किसान को इस पत्थर की असली कीमत का क्या पता? तो उसने कहा पाँच सौ रुपए ले लो। किसान ने हैरानी से देखते हुए कहा, ''क्या पाँच सौ रुपए?'' जौहरी को लगा कि शायद उसे कीमत कम लगी है, तो फिर उसने कहा, ''अच्छा, यह लो हज़ार रुपए!'' जैसे जैसे किसान की हैरानी बढ़ती गई, जौहरी मूल्य बढ़ाता गया। किसान की आँखों से अश्रु बहने लगे। खुद ही खुद से कहने लगा,

''मेरे जैसा मूर्ख शायद ही इस संसार में कोई होगा, जिसने इतना अमूल्य खज़ाना अपने हाथों से खुद ही फेंक दिया हो। खैर! फिर भी शुक्र है कि यह दो-चार पत्थर तो मेरे पास रह गए हैं, जिससे मैं अपना शेष जीवन तो सुख से बिता सकता हूँ।

महापुरुषों ने कहा है,

बीती सो भूलो, बाकी का करो सिमरण,
महापुरुषों के संग में, करो अंतरमन का दर्शन,
यह मनुष्य जीवन, फिर ना मिलेगा कभी!

हर एक मनुष्य जन्म उन्नति करने का एक अमूल्य अवसर है तथा आने वाले जन्मों को सुधारने का। लेकिन आज अज्ञान के अंधेरे में सारी मानव जाति हाथ-पांव पसार रही है। हाथ कुछ भी नहीं आता, पर फिर भी मूर्खतावश अपना जीवन खुद अपने हाथों से बर्बाद कर रहे हैं।

किसी सज्जन ने कहा, ''आज घर बैठे संतों के दर्शन हो पाते हैं, संतों के प्रवचन सुने जा सकते हैं। दूरदर्शन एक ऐसा अच्छा साधन है।'' लेकिन सवाल यह उठता है कि क्या इससे कोई सुधार आया है? घरों में तकरार, झगड़े, बैर, विरोध और अनबन तो कम नहीं हुई है। उलटा दिनोंदिन यह सब बढ़ रहे हैं। वास्तव में यह अब सिर्फ मनोरंजन के साधन बन गए हैं। लोभ-लालच के वशीभूत होकर, झूठ-कपट और ज़्यादा बढ़ गए हैं। यह तो ऐसा है जैसे उलटे घड़े पर पानी डालना! संतों-महात्माओं के वचनों की एक बूंद भी दिल में नहीं उतरती।

सब करते हैं बात, तात ना किसी के तन में,
सुनी सुनाई बातें, करते हैं मुख से,

प्रकट होगी ज़ात, रहने और रिवाज से।

मनुष्य की परख उसके आचरण, रहन सहन और व्यवहार से होती है।

गुरू पूर्णिमा की महिमा

सृष्टि के आरंभ में मानव जाति का एक ही धर्म हुआ करता था, जिसे 'सनातन धर्म' कहते थे। धर्म का सही अर्थ ही है, मेल-मिलाप, प्रेम-भाव भरा व्यवहार! क्योंकि सारी मानव जाति एक परमात्मा से ही उत्पन्न हुई है। युग बीते और मनुष्य मायाजाल के घेरे में आ गया है। मानवता और अध्यात्म मार्ग को भुला बैठा है।

मनुष्य को सही मार्ग दिखाने के लिए, उसे विकारों के दलदल से निकालने के लिए, परमात्मा गुरू रूप में महापुरुषों को समय-समय पर पृथ्वी पर भेजते रहते हैं।

गुरू किसे कहते हैं? जिसके द्वारा मन ईश्वर की तरफ ध्यान लगाए। अटल श्रद्धा और अभ्यास से ईश्वर के दर्शन भी हो सकते हैं। गुरू जब अपने शिष्य की साधना से प्रसन्न होते हैं, तब उसे ज्ञान की बख़्शीश करते हैं। इसीलिए गुरू ऐसे योग्य शिष्य पर नज़र रखते हैं और साधना में प्रवीण होने पर व उसका अधिकारी बनने पर महातत्व ज्ञान का उपदेश करते हैं।

इस कलयुग के समय में ऐसे ऊंची कोटी के महापुरुष हुए हैं, जो विश्व विख्यात हुए, और उन्होंने सर्व मानव जाति को एक जैसा उपदेश दिया। जगत गुरू शंकराचार्य,

जगत गुरूनानक देव, जगत गुरू विवेकानंद आदि जगप्रसिद्ध महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने एक ही अलाप में मानव जाति को मानवता, भाईचारे और प्रेम से रहने का उपदेश दिया। यह इस संसार का दुर्भाग्य है कि ऐसे महापुरुषों के उपदेश भूल जाते हैं और अनेक दुःखों, पीड़ाओं, मुसीबतों और मुश्किलों को दावत देते हैं।

भारत भूमि अद्वैत और आत्मज्ञान, ऋषियों और मुनियों की भूमि है। इस भूमि पर आदिकाल से दत्तात्रय, वामदेव, जड़भरत, विदुर, शंकराचार्य, ज्ञानदेव, गुरूनानक, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानंद, श्री गुरूगोविंद सिंग आदि जैसे महाज्ञानी पैदा हुए हैं, जिन्होंने हर एक में एक ही नूर का संदेश सारे संसार को दिया है। किन्तु अफसोस! आज जहाँ देखो अलग-अलग मंडलियां, पंथ, मज़हब के प्रचारकों ने मानव जाति को बाँट दिया है। कुछ वेदों के विरुद्ध प्रचार कर रहे हैं, कुछ धार्मिक रीति-रिवाज़ों की निंदा करते हैं, कुछ गृहस्थ आश्रम के खिलाफ बोल रहे हैं। कितनी दर्दनाक और अफसोसजनक बुरी हालत बन गई है हमारे भारत देश की। हर रोज़ कोई न कोई नया पंथ, संस्था का निर्माण हो रहा है। फिर भी घर, परिवारों और समाज में कितनी अशांति, नासाज़ी, निफाक, अनबन, तकरार, वियोग और फूट है! और अलग-अलग पंथों में इतनी होड़ है कि हर एक चाहता है कि उसके पास ज्यादा से ज्यादा शिष्य हों। न सिर्फ इतना, पर एक संस्था, दूसरी संस्था के विरुद्ध नाम, ज़मीन और आसन के लिए कोर्ट में मुकदमें डाल रही है। गुरू और शिष्य भी आपस में लड़ रहे हैं, और अलग-अलग संस्था बना रहे हैं।

एक नौजवान घर से रूठकर चला गया। आकर एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उसे एक सन्यासी का साथ मिल गया। जिसके संग में रहकर वह थोड़ा बहुत उपदेश देना, थोड़ा बाजा बजाना, थोड़े मंत्रों का उचारण करना सीख गया और अपने को वेदान्त आचार्य कहलाने लगा। दो-तीन वर्षों में उसके पास काफी शिष्य आ गए। उसने एक दो भजनावली भी छपवाई। अब तो उसके पास एक बड़ा-सा आश्रम, आश्रम में दुनिया भर के आरामदेह पदार्थ, मोटर-कार वग़ैरह हैं। लोग उसके मोटर के पहियों की धूल मस्तक पर लगाकर अपने को कृतार्थ समझते हैं। आज हमारे भारत देश में ऐसे बहुत से मत के मारे, अंधविश्वासी मिलेंगे जो इस तरह के वेश पहने हुए प्रचारकों के चुंगल में फंसकर उनके शिष्य बन बैठे हैं।

युद्ध के मैदान में अर्जुन को मोह ने जकड़ लिया। महीनों से युद्ध की तैयारियां हो रही थीं। पांडवों ने अनेक अत्याचार सहे थे। दुर्योधन ने न केवल कदम-कदम पर पांडवो का अपमान किया था, बल्कि सती द्रौपदी का भी भरी सभा में अपमान किया था। इन सब किए गए अधर्मी कार्यों के विरुद्ध ही भगवान कृष्ण ने कहा, ''अब हद हो चुकी है, अधर्मियों का नाश करना ज़रूरी हो गया है।'' और युद्ध की तैयारियां हो गई थी। इतना कुछ होने पर भी अर्जुन मायूस होकर दुविधा में पड़ गया था कि वह क्या करे? इस दुविधा से निकलने के लिए, उसने अपने बचपन के मित्र, अपने साले और संबंधी श्री कृष्ण से निवेदन किया कि, ''अब मैं इस दुविधा में फंस गया हूँ। समझ में नहीं आता कि इन बुज़ुर्गों और अपने भाईयों से किस प्रकार

युद्ध करूं? अब आप मेरे गुरू बनकर मुझे सही राह दिखाओ, कि मुझे क्या करना चाहिए? इस तरह की भटकी हुई और दुविधापूर्ण अवस्था से निकालने के लिए ही गुरू की आवश्यकता होती है। इस मायाजाल से निकलने के लिए, विकारों की वादी से बाहर निकलने के लिए, विषयों के बहाव से बचने के लिए, गुरू की आवश्यकता होती है। ऐसे सच्चे गुरू धन-सम्पत्ति के लोभ में आकर मंदिर और आश्रम बनवाने के शौक में नहीं फँसते। और न ही उन्हें अपनी प्रसिद्धी या अपने आप को पूजवाने की लालसा होती है। प्रशंसा और निंदा से ऊपर, मान-अपमान से परे, यश-अपयश से बहुत दूर होते हैं ऐसे परम गुरू। वे न तो किसी से द्वेष करते हैं, न किसी के विरुद्ध ही होते हैं। वे सदा सत्य की राह पर चलने वाले, परमात्मा की प्रकृति के नियमों का ईमानदारी से पालन करने का उपदेश करते हैं। उनमें न क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या होती है और न ही पद पाने की लालच या बाहरी दिखावे की ज़रूरत रहती है। वे अपने शिष्यों से भी कहते हैं, ''अनुभव का एक तिनका भी काफी है, पर पंडिताई के पर्वत भी व्यर्थ हैं।''

गुरू पूर्णिमा की अहमियत यह है कि इस दिन शिष्य अपने गुरू के चरणों में बैठकर, धैर्य और अभ्यास से, अपने अंदर जो रूहानी शक्ति इकट्ठी कर चुके हैं, उसका स्मरण करें और अधिक तीव्र साधना का संकल्प कर, गुरू का आशीर्वाद प्राप्त करें, जिससे उनके अंदर में रूहानी लहरें नए जोश से पैदा हों।

सच्चे गुरू सिखाते हैं, ''हर एक में अपनी आत्मा का दर्शन करो। हर किसी को प्यार दो। बिना भेद-भाव किए

दु:खियों, बीमारों और भूखों की सेवा करो। हर एक में परमात्मा का दीदार कर, परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त करो। अपना व्यवहार साफ रखो। सच और ईमान की रोटी खाओ। धोखा और दंभ न करो। व्यर्थ का दिखावा मत करो। ऐसा करने से आपका अंत:करण शुद्ध होगा, और अंदर में ही उसकी झलक देख सकोगे।''

विश्वासी और सुशील शिष्य के लिए यह दिन गुरू पूजा का, अत्यंत खुशी देने वाला और आनंददायक होता है, क्योंकि गुरू ही शिष्य को नया जन्म देता है, और ज्ञानमार्ग में लगाता है। ऊंची मंज़िल वाले शिष्य का हृदय सदा प्रभु प्रेम में डूबा रहता है। इसी लिए वे गुरू को इतने अटल विश्वास, निश्चय और प्यार से देखते हैं कि जैसे साक्षात् परमेश्वर का दर्शन कर रहे हैं।

गुरू का अधिकारी शिष्य पर इतना ध्यान रहता है कि शिष्य के अध्यात्म मार्ग में आने वाली रुकावटों को हटाने का मार्गदर्शन करते हैं। शिष्यों के मार्ग में ज्यादातर जो रुकावटें आती हैं वे हैं - (१) पदार्थों से लगाव, (२) अविश्वास, (३) तामस बुद्धि के कारण गलत संस्कार और आदतें, (४) सुख सम्पत्ति का अभिमान। गुरू उनसे मुक़ाबला करने के लिए (१) शम, दम, उपरति, तितिक्षा, चित्त शुद्धि और आत्म संयम द्वारा कामनाओं का नाश करवाते हैं, (२) सांसारिक पदार्थों से मोह निकालने के लिए हर हाल में धैर्य, सहनशीलता से गुज़र करने के लिए उपदेश करते हैं, (३) बार - बार स्मरण करने से ग्रहण शक्ति की कमज़ोरी हट जाती है, (४) प्रवचन और उपदेश सुनने से और उनका निरंतर मनन करते, अविश्वास और अश्रद्धा दूर हो जाती है, (५) गुरू

की शिक्षा पर अमल करना तथा उनकी आज्ञा पालन में अपना अहम, अहंकार दूर हो जाता है। हालांकि ऐसी जागृति एक जन्म के पुरुषार्थ करने से मिलना कठिन है। ऐसी सूक्ष्म और श्रेष्ठ बुद्धि कितने जन्मों के परिश्रम पश्चात् ही मिलती है। सच्चा गुरू समय आने पर शिष्यों की परीक्षा लेता है। गुरूगोविंद सिंग ने एक बार अपने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही। बैसाखी का मेला अनंदपुर में रचा गया था। उसमें उस वक्त करीब अस्सी हज़ार शिष्य शामिल हुए थे। गुरू साहब तख्त पर आकर, हाथ में तलवार उठाकर, बड़ी आवाज़ से कहने लगे, ''जिस शिष्य की मुझ में श्रद्धा हो वह मेरे सामने आए, मुझे उसका सिर चाहिए।'' बहुत से शिष्य डर के मारे शामियाने से बाहर चले गए। बहुत देर बाद एक शिष्य साहस जुटा कर सामने आया। इतने सारे शिष्यों में से सिर्फ पांच शिष्य गुरू की परीक्षा में सफल हुए। हालांकि गुरू साहिब ने खेमे में पांच बकरों के सिर काटे, और ये पांच शिष्य गुरू के प्यारे बन गए। गुरू अपने शिष्यों की अनेक प्रकार से परीक्षा लेते रहते हैं। लेकिन ऐसे अविश्वासी शिष्य गुरू को न समझकर गुरू को छोड़कर चले जाते हैं। आध्यात्मिक मार्ग में जिन्हें उन्नती करनी होती है, जो जन्म-मृत्यु के चक्कर और दुःखों व कष्टों से छुटकारा पाना चाहते हैं, वे गुरू की शिक्षा, हर हिदायत का, विश्वास और निष्ठा से पालन करते हुए, अपनी कमाई कर लेते हैं। यह कमाई वैसे ही छुपा कर की जाती है जैसे पतिव्रता स्त्री पति के प्रेम को अपने भीतर ही छुपाए रहती है। बाकी देह को दिखाने वाली कमाई, नाम, प्रसिद्धि और अपनी पूजा करवाने में वहीं खत्म हो जाती है। उन्हें उसके आगे

कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

आज आकाशवाणी, दूरदर्शन और इश्तिहार आदि, मान-प्रसिद्धि के सरल साधन बन गए हैं। जिन्हें सच की तलाश है, वे अपने आप को इनसे बचा कर रखते हैं। बाकी शेष तो इन साधनों में फंस जाते हैं। यह सही है कि कलयुग में ये साधन भी अच्छे हैं, पर देखना यह है कि उनका असर कितना होता है! दूरदर्शन पर इन महात्माओं के प्रवचन, सत्संग, शिष्यों के खर्च पर दिखाए जाते हैं। उनका असर कितना और कैसा होता है? क्या घरों में तकरार, झगड़े, अनबन, तृषि वाला वातावरण कम हुआ है? क्या विरोध, कलह, क्लेश और फूट कम हुए हैं? दिनोंदिन नाम वाले गुरू के शिष्य कहलाने वाले, ज्यादा प्रपंच में फंसकर द्वेष और भेद-भाव में भटक रहे हैं। एक दूजे की सम्पत्ति हड़प करने के लिए झूठे 'केस' न्यायालयों में कर रहे हैं। यह है आजकल के शिष्यों का व्यवहार!

फिर भी ऐसी हस्ती वाले छुपे हुए महापुरुष आज भी हैं, जिन्हें आज का साधारण इन्सान पहचान नहीं पाता। ऐसी एक ऊंची हस्ती, रमन महर्षि को भारतवासी काफी समय तक पहचान नहीं सके। एक विदेशी 'पॉल ब्रिन्टन' ने, भारत में आकर उन्हें ढूंढ निकाला। ऐसे महर्षि चुपचाप विश्व शांति के लिए प्रार्थना करते रहते हैं। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया, सर्वे भद्राणी पषियन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग् भवेत।' सभी प्राणी सुखी रहें, सभी प्राणी निरोग्य रहें। सब को सत्य की प्राप्ति हो। सब का जीवन सुखमय हो और किसी को भी जीवन में कष्ट न मिले।

द्वापर युग का अवतार, प्रिय भगवन!

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिः भवति भारत।
अभ्युत्थान अधर्मस्य तदाऽत्मानं सृजाम्यहम॥

''जब-जब धर्म की हानि होती है, पाप से दब जाती है भारत भूमि, साधूओं पर भारी कष्ट आते हैं; तब बोझ हटाने हेतु, साधूओं की रक्षा के लिए, धर्म-मर्यादा स्थापित करने के लिए, ईश्वर मनुष्य रूप धारण कर, अवतार बन पृथ्वी पर प्रकट होते हैं।''

ये वचन गीता में भगवान के मुख से निकले हुए हैं। यह सारा जगत परमात्मा की संपत्ति है। सारी मानव जाति उसके रचे संसार की सेवक है। हर एक इन्सान को अपने कर्मानुसार सौग़ात या सज़ा मिलती है। हर एक युग के अंत में जब पृथ्वी पर पाप का बोझ बढ जाता है, तब आवश्यकतानुसार प्रभू स्वयं किसी न किसी रूप में आकर, पापियों का विनाश कर साधूओं और श्रेष्ठ मनुष्यों की रक्षा करते हैं।

त्रेता युग में जब रावण और उसके राक्षस साथी, संतों और महात्माओं पर ज़ुल्म करने लगे, तब भगवान राम का अवतार धारण कर पृथ्वी पर पधारे।

द्वापर युग में कंस का विनाश करने के लिए भगवान श्री कृष्ण के अवतार में आए। पांडवों और कौरवों के बीच में होते अधर्म को खत्म करने के लिए, धर्म युद्ध करवाकर पृथ्वी के बोझ को हलका किया। सावन के महीने में, कृष्ण पक्ष की अष्टमी में आधी रात को भगवान माता देवकी के

गर्भ से प्रकट हुए। भगवान ने पहले चतुर्भुज रूप में, पीतांबरी पहने, चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पदम धर, कमल समान सुंदर नेत्रों, तेजस्वी और मनोहर रूप में देवकी और वासुदेव को दर्शन दिया। जेल की अंधेरी कोठरी अलौकिक प्रकाश से जगमगाने लगी। भगवान माता देवकी और वासुदेव से बोले, ''पिछले जन्मों में आपने तपस्या करके, मुझ जैसे पुत्र का वरदान मांगा था, आज आपका वह वरदान पूरा करने के लिए और पृथ्वी पर अपना कार्य पूर्ण करने के लिए आया हूँ।'' वासुदेवजी से उन्होंने कहा, ''आप जल्द मुझे गोकुल के नन्द और यशोदा के घर छोड़ कर और यशोदा मैय्या की नवजात कन्या को ले आओ।'' ऐसा कह कर, उन्होंने अपना चतुर्भुज रूप समेट कर, नवजात शिशु का रूप धारण किया। वासुदेव ने फौरन एक फलों की टोकरी उठाई, बालक को उस में सुला कर, परमात्मा के आदेश का पालन किया। परमात्मा की माया से वशीभूत होकर हथकड़ियां अपने आप खुल गई। पहरेदारों को नींद आ गई, और जेल के द्वार अपने आप खुल गए। अचानक वर्षा होने लगी, पर एक काला सर्प अपना फन फैलाकर टोकरी में सोए बालक की बारिश से सुरक्षा करता रहा। जमुना नदी, जो अधिक वर्षा के कारण फूल गई थी, उसने भी वासुदेव को पार जाने के लिए रास्ता दिया। नन्द के घर में भी सभी को नींद ने घेर लिया। बहुत आसानी से वासुदेव भगवान रूपी बालक को रख, यशोदा के पास में सोई बच्ची को लेकर वापस जेल पहुँचे। द्वार अपने आप फिर से बंद हो गए। हाथों में हथकड़ियां लग गई। बालिका रोने लगी। रोने की आवाज़ सुनकर पहरेदारों ने कंस को खबर दी कि देवकी

ने बालक को जन्म दिया है। यह सुनते ही कंस दौड़ता हुआ जेल में आया, क्योंकि उसे देवकी के जिस आठवें पुत्र से मृत्यु का डर था, उसे मारकर अब वह उस डर से मुक्त हो जाएगा। यह सोचकर वह जेल में आया और हर बार की तरह उसने उस बालिका को उठाकर पत्थर पर पीटकर मारने की कोशिश की तो वह बालिका उसके हाथों से छूट गई। आकाश मार्ग से जाती उस बालिका के रूप में आई योगमाया ने उसे बताया कि, ''तुम्हें मारने वाला गोकुल में जन्म ले चुका है।'' इस तरह त्रिलोकीनाथ भगवान श्री कृष्ण का मनुष्य रूप में अलौकिक जन्म हुआ। जिसने इस सृष्टि का निर्माण किया है, उसे अच्छी तरह से पता है कि उसे कैसे चलाना है। संसार में ही देखो तो एक काखानेदार अपने कारखाने के काम और कर्मचारियों पर कड़ी नज़र रखता है। समय आने पर कर्मचारियों से कारखाने के नियम कड़ी तरह से पालन करवाता है। दोषी कर्मचारियों को निकाल फेंकता है। इसी प्रकार इस सृष्टि का मालिक भी हम पर कड़ी नज़र रखता है। समय आने पर हर एक को अपने किए हुए कर्मानुसार सज़ा या पुरस्कार मिलता है।

भगवान चाहे स्वयं सर्व शक्तिवान हैं, पर फिर भी जब वे मनुष्य रूप में अवतार लेते हैं, तो मनुष्य की मर्यादा का पालन करते हैं। श्री कृष्ण का बचपन नटखट, खेल-कूद में व्यतीत हुआ। यह सब होते हुए भी अपने अवतार लेने के कारण का पालन भी करते रहे। बाल अवस्था में ही पूतना राक्षसी का अन्त करना, वर्तसासुर, धेणकासुर, प्रलंब आदि राक्षसों को मारना, कालिया नाग को सज़ा देकर जमुना

से बाहर निकालना, एक छोटी ऊंगली पर गोवर्धन पर्वत उठाना, ऐसे बहुत सारे कौतुक किए। फिर प्रेम स्वरूप भी ऐसे थे कि बाल अवस्था में ही ग्वाल बाल और गोपियों से प्रेम लीला रचाकर, बांसुरी की धुन पर सारी प्रकृति को मोहित कर दिया। ग्वाल और गोपियां सारा दिन उसके प्रेम में पागल हो, उस मुरली मनोहर के पीछे फिरते रहे। कृष्ण की मुरली में अजीब सा जादू था। स्वामी विवेकानंद एक बार अमेरीका में अपने व्याख्यान में श्रीकृष्ण की मुरली के जादू की बात बता रहे थे कि किस तरह गोपियां और ग्वाले, गाएं, वन के पक्षी तक उस मुरली की धुन पर दौड़ते आते थे। यहाँ पर कुछ लोगों को शंका हुई कि यह कैसे हो सकता है? स्वामी विवेकानंद ने इस का जवाब प्रवचन के द्वारा दिया। स्वामीजी का एक बड़े खुले मैदान में प्रवचन आयोजित किया गया था। प्रवचन का विषय था, 'भगवान श्रीकृष्ण की लीला।' श्रोतागण इतने मुग्ध हो गए थे कि जब स्वामी चलने लगे तो वे भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। मैदान में काफी आगे बढ़ गए। विषय मुग्ध करने वाला था, और अचानक स्वामीजी अपना व्याख्यान बंद करके दौड़ने लगे, तो सब लोग भी उनके पीछे दौड़ने लगे। बहुत आगे चलकर स्वामीजी रुक गए। तब लोगों के समुदाय से यह आवाज़ आई, ''स्वामीजी, अपना व्याख्यान चालू रखिए, बंद मत करिए।'' स्वामी जी ने उस दिन वाली कृष्ण की मुरली के जादू की बात याद दिलाते हुए कहा, ''मैं तो एक साधारण इन्सान हूँ, आप मेरे प्रवचन की कशिश से मेरे पीछे दौड़ते आए हो। ज़रा सोचो कि त्रिलोकीनाथ, जो सारे जगत के मालिक हैं, उनकी मुरली में कितना जादू

होगा!''

इस तरह भगवान कृष्ण की बाल अवस्था की लीलाओं वाला हिस्सा, बारह वर्ष की आयु में संपन्न हुआ। अब कंस का वध करने के बहाने गोकुलधाम को छोड़ मथुरा में आए। जहाँ कंस को मारकर, अपने नाना उग्रसेन, पिता वासुदेव और माता देवकी को जेल से मुक्त करवाया।

श्रीकृष्ण मर्यादानुसार विद्या प्राप्त करने संदीपन आश्रम में रहकर, कुछ ही समय में सब विद्याएं सीख गए। आश्रम में रहते, उनकी सुदामा के साथ गहरी मित्रता बन गई। आगे चलकर सुदामाजी को बहुत कठिन समय देखना पड़ा। एक बार सुदामाजी की स्त्री सुशीला ने उनसे कहा, ''द्वारका का राजा कृष्ण आपका मित्र है ना, आप उन के पास चले जाओ तो हमारे दु:ख दूर हो जाऐंगे।'' यह सोचकर, पत्नी के कथनानुसार सुदामा द्वारका की तरफ पैदल निकल पड़े और आकर कृष्ण के महल के बाहर पहुँचे। श्रीकृष्ण अपने बचपन के मित्र को देखते ही दौड़कर उसके गले लग कर लिपट गए। स्नेह और प्रेम से सुदामा को महल में लाकर खूब आदर सत्कार किया। श्रीकृष्ण ने बचपन की यादों का स्मरण करते हुए कहा, ''तुम्हें याद है, एक बार हम जंगल में लकड़ियां चुनने गए थे। वहाँ ज़ोर की बारिश और तूफान आ गया था। हम एक पेड़ पर चढ़ गए थे। उस वक्त ठंड से तुम्हारे दाँत कटकटा रहे थे।'' सुदामा के विचारों में वह तस्वीर आ गई। माता संदीपनी ने दोनों के लिए सुदामा को चने दिए थे कि बाँट कर खाना। उस दिन सुदामा ने अकेले ही पेड़ पर बैठकर चने खाए थे। खाने की आवाज़ पर सुदामा ने श्रीकृष्ण से झूठ कहा था।

सुदामा सोचने लगा कि भगवान का यह सब याद दिलाने का मतलब यही है कि उस झूठ बोलने के कारण ही मैंने दरिद्रता पाई है। सुदामा की आँखों में आंसू आ गए। मानो पछतावा करते हुए उन्होंने भगवान से क्षमा मांगी। भगवान ने उसे गले लगाकर कहा, ''ऐसे ही बचपन की शरारतें याद आ गईं। परन्तु अब कोई फिक्र मत करो।'' भगवान मानो उसे यह विश्वास दिला रहे थे कि अब दुःखों के दिन मिट गए। ''दूर किए सुदामा के दुःख और धोखे, कच्चे चबाए उसके चोखे (चावल), उसके लिए स्वर्ण मंदिर बना कर आपने कमाल कर दिया।''

भगवान श्री कृष्ण के जीवन का दूसरा दौर - ज़ालिम राजाओं को सज़ा देना था। कई वर्ष युद्ध करके कई राजाओं को जीत कर अपने अधीन किया। वर्षों तक युद्ध करने से भगवान थक गए थे। उन्होंने संकल्प किया कि अब वे अपने हाथों में शस्त्र नहीं उठाएंगे। त्रिलोकीनाथ ने यह जान लिया था कि उन्हें अपने ही संबंधियों पांडवों और कौरवों के मध्य युद्ध में दोनों का ही साथ निभाना है। इसीलिए उन्होंने शस्त्र न उठाने का संकल्प किया था। द्वापर युग समाप्ति पर था। अधर्म पर धर्म की विजय करवाने के लिए भगवान ने कौरवों और पांडवों के मध्य युद्ध का कौतुक रचा। हालांकि ज़ाहिरी तौर भगवान कृष्ण ने यह चाहा था कि दोनों दल आपस में समझौता कर लें। मगर हठीले दुर्योधन ने किसी भी प्रकार का समझौता करने से इन्कार कर दिया। पांडव ज्ञानी थे, उनका भगवान श्री कृष्ण में अटूट विश्वास था। पूरा जीवन कष्टों में उलझते भी उन्होंने भगवान का साथ नहीं छोड़ा। युद्ध के मैदान में अर्जुन को मोह ने जकड़

लिया कि, ''कैसे अपने सगे संबंधियों से युद्ध करूंगा?'' अर्जुन दुविधा में पड़ गये कि वह क्या करें? मनुष्य जब किसी जीवन संग्राम में उलझ जाता है, तब उसे किसी ऐसे रहबर की आवश्यकता प्रतीत होती है जो उसे सही राह दिखाए। इसी तरह बचपन के साथी और संबंधी कृष्ण को अर्जुन ने कहा, ''अब गुरू बन कर मेरे मोह को दूर करो।'' भगवान श्रीकृष्ण ने न सिर्फ परेशान अर्जुन को बल्कि हर उस भटके मनुष्य को राह दिखाने के लिए गीता का ज्ञान दिया। ''हे अर्जुन, तू मोह को त्याग करके अपने कर्तव्य को पहचान। अपने कर्तव्यों का सचाई से पालन करते अगर तुझसे कोई दोष हो भी जाए, तो तुझपर पाप नहीं चढ़ेगा। सभी मानसिक दुविधाओं का त्याग करके, अपने कर्तव्य सचाई और ईमानदारी से पूरे करोगे, और हर कार्य में मुझे ही कर्ता जानोगे, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा।''

भगवान का यह कहना, हर मनुष्य के लिए, चाहे वह किसी भी धर्म, पंथ या समाज का हो, आज भी सही है।

इसी तरह धर्म का अभ्युदय करके, अधर्मियों को पृथ्वी से हटाकर, साधू संतों के लिए सुरक्षित वातावरण बना कर, भगवान अपना कार्य समाप्त करके, वैकुंठ धाम को पधारे। पांडवों ने भी कुछ समय तक राज करके, सुख शांति के वातावरण को पृथ्वी पर कायम रखा। बाद में अपने पोते परीक्षित को राज्य सौंप कर, वनवासी हो गए।

इस तरह राजा परीक्षित के साथ ही कलयुग की शुरूआत हुई। आम इन्सान के विचार और व्यवहार बदलते रहे। आज

चारों ओर कलयुग में झूठ, कपट, अनबन, लोभ और पाखंड का साम्राज्य है।

कलयुग में भक्ति ही एक सरल साधन है, उस आनंदकंद भगवान श्रीकृष्ण को पाने का। शुद्ध मन, अनन्य भाव से हृदय में प्रेम धारण करके जो भी मनुष्य किसी भी रूप में भगवान का ध्यान करता है, उसे उसी रूप में परमात्मा दर्शन देते हैं। ''जाकी रही भावना जैसी, तिन प्रभु मूरत देखी तैसी।'

सीप का मोती!

प्यारी सिंध की पवित्र भूमि पर अनेक संत, सूफी, दरवेश, कवि, आचार्य और विद्वान जन्म ले चुके हैं, जिन्होंने समय - समय पर अपना जीवन आम लोगों के भले और सुधार के लिए समर्पित किया है। उनमें से कई जगप्रसिद्ध हुए, पर कुछ ऐसे भी हैं जो सीप के मोती की भांति छुपे ही रहे और जिन्हें बहुत कम लोगों ने पहचाना। ऐसे ही एक लाल गृहस्थ और व्यवहारिक जीवन का निर्वाह करते, बहुत से लोगों को राम नाम का रस पिलाकर अपना जीवन अमर कर गए। वे थे दादा लालचंद पुनवाणी! ये महाशय सदा ही गुप्त कार्य किया करते थे।

हमारे सिंधी समाज को श्री गुरूनानक देव और ग्रंथ साहब से जिन सज्ञनों ने जोड़ा, वे थे मास्टर फतहचंद मेघराज आडवाणी, दीवान लीलाराम सिंग वतनमल लालवाणी, श्री जीओमल लोकसिंग लालवाणी, इत्यादि। इन गुरु प्रेमियों के प्यार और

मेहनत से और पच्चीस सालों के कड़े परिश्रम से पूरा ग्रंथ साहब, अर्थ सहित २५ भागों में बन कर तैयार हुआ।

कहते हैं कि मीरों की हुकुमत के दिनों में दीवान गिदूमल मीरों के पास मंत्री के पद पर कार्य किया करते थे। मीरों ने सिंधी हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किए। किसी भी सुंदर महिला पर नज़र पड़ी, फिर चाहे वह कुंवारी हो या विवाहित, तो वे मीर उनको अगर उनकी ख़ुशी से नहीं ले जा सकते थे, तो ज़बरदस्ती भी अपने पास रख लेते थे।

दीवान गिदूमल की बेटी पद्मिनी पर इन जानवरों की नज़र पड़ गई, और उन्होंने उसकी मांग की। पर इस सीलवंती ने ज़हर का प्याला पीकर अपना अंत किया। उस समय पंजाब में महाराजा रंजीत सिंह का राज था। मुसलमान उनसे डरते थे। महाराज बड़े जांबाज़ थे। ऐसे समय में कहते हैं कि किसी प्रकार महाराजा रंजीतसिंह ने सिंध में एक सौ गुरू ग्रंथ साहब की सवारियां भेजीं। जिस किसी भी घर में गुरू ग्रंथ साहब विराजमान हुए, उस घर पर झंडा निशान साहब लगाया गया और घर का एक पुत्र खालसा बना। उस समय परिवार नियोजन नहीं हुआ करता था। हर घर में ५-१० बच्चे तो होते ही थे। इस तरह हमारे सिंधी समाज में (जिस तरह की बातें सुनी गई हैं, वास्तविक्ता शायद कुछ और ही हो) श्री गुरू ग्रंथ साहब की भक्ति और सेवा का आरंभ हुआ। हैदराबाद के हीराबाद में गुरू ग्रंथ साहब की स्थापना हुई। बाद में कितने ही मंदिरों, गुरुद्वारों में श्री गुरू ग्रंथ साहब को विराजमान किया गया। वक्त गुज़रते सिंधी समाज का बड़ा हिस्सा गुरू ग्रंथ साहब को अपना इष्ट देव मानने लगा। बँटवारे के बाद हमें वतन

छोड़ना पड़ा। समाज दरबदर हो गया। ऐसे समय में परमात्मा और उसका नाम ही एक बड़ा सहारा बन गया। गुरुवाणी के प्रचार ने बहुत दिलों को आश्वस्त किया। इसमें एक तरफ परम पूज्य दादा चेलाराम मनसुखानी तथा दूसरी तरफ परम पूज्य दादा लालचंद पुनवाणी ने अथक प्रयत्न किया!

दादा लालचंद ने बंबई, बड़ोदा, पूना और कितनी जगहों पर गुरु संगत की स्थापना करवाई, जहाँ पर नियमानुसार आसादीवार कीर्तन, सोदर संध्या रहरास इत्यादि कार्यक्रम आरंभ करवाए।

समय बीतते देर नहीं लगती। बँटवारे के दुःख धीरे-धीरे मिटते गए। सिंधी सज्जन जहाँ-जहाँ रहे, वहाँ के ही इष्ट देवों में विश्वास रखने लगे। बहुत सारी संस्थाएं, बहुत सारे पंथ निकल पड़े, विश्वास और श्रद्धा बँटने लगी।

पर यह सतगुरु के प्यारे, मजनू की भांति, जगह-जगह पर नाम वाणी का नाद बजाने लगे। दादा लालचंद पुनवाणी बिल्कुल सादे रहन-सहन वाले, सची कमाई वाले, अपने दो-चार सत्संगियों के साथ मिलकर गुरुवाणी का प्रचार करने लगे।

दादा लालचंद का जन्म हैदराबाद सिंध में उन्नीसवीं सदी के अंत में हुआ। आपस में दो भाई थे, गुलाब और लालू। डॉक्टर बूलचंद से इनके पारिवारिक संबंध थे, जिस कारण वे उनके घर आया-जाया करते थे। इसीलिए डॉक्टर बूलचंद इन दोनों भाइयों को बहुत प्यार करते थे। गुरदासमल स्कूल से विद्या प्राप्त करने के बाद बड़ा भाई गुलाब विदेश में व्यापार करने चला गया और लालू बन गया मास्टर लालचंद! बड़े भाई ने कमाई करोड़ों की सम्पत्ति, जो यहीं रह गई।

छोटे ने कमाया नाम, जो सदैव साथ रहता है। दादाजी की बचपन से ही नाम के साथ तार जुड़ गई थी। सुबह सैर के लिए जाते तो नाम स्मरण करते हुए कहते थे ''इस स्मरण करने से मुझे शक्ति मिलती है।''

कुछ समय पश्चात् डाक्टर बूलचंद की पहचान और समझाने की वजह से मास्टर लालचंद का विवाह एक सुशील और सीलवंती कन्या से हुआ। उनका नाम मोहिनी था। दोनों का आपस में बहुत अच्छा मेल था। एक दूसरे के विचारों से मेल रखते थे। हालांकि मोहिनी को दुनैवी शौक भी थे जिस पर मास्टर साहब ने कभी भी आलोचना नहीं की। पर वे स्वयं गुरुवाणी के कीर्तन की तरफ ही झुके रहे। हैदराबाद के गुरु संगत में जाकर नियम से कीर्तन करते थे। सारी संगत उनके कीर्तन से बहुत प्रभावित हुआ करती थी। वहाँ मोहिनी काँग्रेस के कार्यों में जुट गई। आज़ादी के आंदोलन में कई बार जेल भी गई। उन्हें बाल बच्चे भी हुए। घर का वातावरण बहुत सुख - शांति भरा था।

बँटवारे के बाद दोनों अपने बच्चों सहित अजमेर आ गए! वहाँ शरणार्थी नारी शाला में, दोनों पति - पत्नी ने सेवा कार्य किया। पर थोड़े वर्षों के बाद बम्बई में आकर कोलीवाड़ा में रहने लगे। दादा को गुरुवाणी कीर्तन करने की धुन थी। वहाँ कोलीवाड़ा में गुरु संगत की स्थापना की। हैदराबाद से श्री गुरू ग्रंथ साहब और गुरु संगत का जो सामान लाए थे, वह इस नए मंदिर में रख कर, खुद सेवा कार्य में जुट गए। उन्हें अपना कोई स्वार्थ नहीं था। जो पैसा उन्हें मिलता, वह मंदिर को ही दिया करते थे।

दादा लालचंद को गुरुवाणी की बहुत अधिक लगन लगी

हुई थी। उन्होंने गुरुओं का पूरा इतिहास फिर नए सिरे से लिखना शुरू किया। दस साल लगातार अपना नूर निचोड़कर, सख्त जफाकशी कर के 'गुरू दर्शन माला' नामक दस गुरुओं के जीवन चरित्र और ग्रंथ साहब में लिखी हुई वाणी लिख़ी। 'गुरु संगत' और 'हिन्दुस्तान किताब घर' के सहकार से पाँच हज़ार पन्नों में बीस भाग छपवाकर प्रस्तुत किए और बहुत सस्ते दामों में (हर भाग सिर्फ पाँच रुपए में) प्रेमियों को दिए। आज वे पुस्तकें मिलना दुलर्भ है। ऐसी दुलर्भ पुस्तकें फिर से छपवाना बहुत ही कठिन कार्य है।

बाल-बच्चे बढ़कर शादी के लायक हो गए तथा अपने पैरों पर खड़े हुए तो दोनों पति-पत्नी गृहस्थ कार्यों से मुक्त हो सेवा कार्य में लग गए। बहुत सादा रहन-सहन, सादा पहनावा, संसार के विषय पदार्थों से दूर, सुख-संतोष और आनंद में दोनों का जीवन बीतने लगा।

मोहिनी की हालत कुछ समय से बिगड़ गई। दादा ने स्वयं अपनी पत्नी की सेवा की। आखिर वह यह संसारी यात्रा पूरी कर के अलख धाम को चली गईं। दादा अपने आप को अधिक स्वतंत्र समझकर कीर्तन सेवा में जुट गए। बम्बई के अलग-अलग मंदिरों में, गुरुद्वारों में क्रमानुसार कीर्तन किया करते थे। दादा त्याग की मूर्ति थे जिसका एक उदाहरण निम्नलिखित घटना है। अपना फ्लैट खरीद किए हुए दामों में बेचकर, (हालांकि उस वक्त उसके दाम पाँच गुना थे) खुद को संगत के हवाले कर दिया। कुछ समय के लिए मुलुंद के वृद्धाश्रम में रहे और बाद में सत्संगियों के घरों में रहकर गुज़ारा करने लगे। इतनी बढ़ी आयु में भी यात्राएं कर बड़ोदा, पुणे, कलकत्ता और बैंगलोर वग़ैरह शहरों में

जाकर कीर्तन किया करते थे। समय के पाबंद थे। एक बार कोलाबा में सचखंड दरबार में उनका कार्यक्रम था। चर्चगेट तक रेल से आकर स्टेशन के बाहर खड़े हुए। कोई प्रेमी उन्हें वहाँ से मोटर कार में ले जाने वाला था। कुछ समय इंतज़ार करने के बाद, पैदल चलकर नियमित समय पर पहुँचकर उन्होंने कीर्तन शुरू किया। उनका दिल भी दया से भरा हुआ था। एक सज्जन ने बताया कि वे एक बार ट्रेन में सफर कर रहे थे। रात के समय दादा बाथरूम में जाने के लिए उठे। ट्रेन के दरवाज़े पर एक गरीब आदमी फर्श पर सोया हुआ था। सर्दी का मौसम था और वह गरीब ठंड के मारे कांप रहा था। दादा ने लौटकर अपना कंबल उठा कर उस सोये हुए गरीब इन्सान पर डाल दिया और खुद सिमटकर सो गए।

आखिर दादा की सेहत बिगड़ गई। उन्हें पेशाब की तकलीफ हो गई। उन्हें जसलोक अस्पताल में दाखिल किया गया। सत्संगी प्रेमियों ने दिलोजान से दादा की सेवा की। अस्पताल से जब वे अपने बेटे के घर अँधेरी में रहने गए, तब यह दास उनसे मिलने गया था। उनके चहरे पर मुस्कान थी। पेट में नली पड़ी हुई थी पेशाब के लिए, पर चेहरा चमकदार और मुस्कराता हुआ था। उनके अंतिम शब्द मुझे याद हैं। ''भगवान ने मुझे अब सेवा के लायक नहीं रखा है, तो फिर मैं यह शरीर रखकर क्या करूंगा? बस अब अधिक जीने की इच्छा नहीं, जब तक मुझसे सेवा करवा रहे थे तब तक जीने में आनंद आ रहा था।'' इस मुलाकात के ठीक तीसरे दिन खबर मिली कि दादा ने यह शरीर त्याग दिया! ३ सितंबर १९८३ ई. को अपनी जीवन यात्रा

पूरी करके गुरू के चरणों में समा गए।

इस छुपे हुए लाल को कुछ गिने-चुने लोगों ने ही पहचाना। कुछ थोड़े से लोगों ने उनकी सेवाओं की कदर की! एक बार एक दरबार में कीर्तन और कथा कर रहे थे। दरबार को संभालने वाले ने बीच में उन्हें टोककर कहा, ''यहाँ कथा-वथा मत करो, सिर्फ कीर्तन ही करना है।'' दादा ने हाथ जोड़ कर उससे कहा, ''भाई, हम कीर्तन करने के लायक नहीं हैं। आप स्वयं कीर्तन कीजिए, हम सुनेंगे।'' ऐसा कहकर वे आसन से उतरकर संगत में आ बैठे और कीर्तन समाप्त होने तक बैठे रहे। उन्होंने न इसमें अपना अपमान माना न ही क्रोधित हुए।

आज भी समाज में बहुत से छुपे हुए हीरे व लाल हैं जिनकी इस समाज पर आशीष है। कलयुग का समय है, कितना न पाप, अत्याचार, ज़ुल्म, जबरदस्तियां व धोखा-फरेब हो रहा है इस पृथ्वी पर!

नारद ने भगवान से पूछा, ''हे प्रभु कलयुग में पृथ्वी किस तरह इतने पाप के बोझ को सह सकेगी?'' इस पर प्रभु ने उत्तर दिया, ''कलयुग का बोझ नाम के सहारे से ही सहा जाएगा। पृथ्वी पर थोड़े ही सही, ऐसे दिव्य पुरुष भी होंगे, जिन के पुण्यों के सहारे यह पृथ्वी टिकी रहेगी। ऐसे दिव्य पुरुष अपने सुख भुलाकर, कष्ट-क्लेश धैर्य से सहते हुए, संसार की बातें सुनकर भी जगत कल्याण के लिए नाम का नाद बजाऐंगे। ऐसे ही दिव्य लोग अपना तो जीवन सफल करते ही हैं, पर दूसरे अनेकों को जीवन सफल करने की राह बताते हैं। वे मुक्ति भी नहीं चाहते, बल्कि चाहते हैं सेवा और भक्ति!

अगर संत न होते, तो जगत आग के शोलों में जलता रहता।

बड़ी बात तो यह है कि ऐसे दिव्य लोग गृहस्थ में रहकर भी निर्लेप रहते हुए जीवन सफल करते हैं। सुखमनी साहब में गुरु अर्जुन देव ने फरमाया है,

''अन दिन कीर्तन केवल बखियां -
गृहस्थ में सोई निर्वाण।
गृहस्थ में रहते रात दिन, भगवान को रिझाते हैं,
दास वो संसार में रहते, पद निवार्ण को पाते हैं।
धन्य धन्य वे संत सच्चे, आना उनका सफल हुआ,
जिन के साथ सिमरण से, जग का बेड़ा पार हुआ।
खुद तो नाम जपते हैं, औरों से भी जपवाते हैं,
खेल है यह जगत सारा, ज्ञात यह करवाते हैं।''

ओ बंदे! भूली राह से लौट आ!!

टेबल पर एक गुलाब का फूल रखा था। एक पुजारी ने उसे देखकर कहा, ''यह फूल तो पूजा में भगवान के चरणों में अर्पण किया जाए।'' कुछ समय पश्चात् एक वैद्य ने उस फूल को देख कर कहा, ''फूल बहुत अच्छा, लाल रंग का है। ऐसे फूलों का गुलकंद अच्छा बन सकता है।'' बाद में एक दार्शनिक ने फूल को देख कर कहा, ''कितना खूबसूरत फूल है, जैसे प्रकृति स्वयं मुस्करा रही हो!'' एक

स्त्री ने भी उस फूल को देखा। बहुत खुश हो कर बोली, ''यह फूल अगर अपने बालों में सजाऊं तो कितना अच्छा लगे।'' जैसे एक फूल को देखकर अलग-अलग लोगों में भिन्न-भिन्न भावनाएं जागृत हुई, ठीक उसी प्रकार इस सृष्टि की रचना के बारे में भी ज्ञानवान, विद्वान, वैज्ञानिक और विचारवानों की अलग अलग राय हैं।

कुछ कहते हैं कि सृष्टि आद-जुगाद से चली आ रही है। इस का रचैता कोई भी नहीं। प्रकृति अपने आप कार्य कर रही है। कुछ मानते हैं कि एक ईश्वर है, जो निराकार, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सब कलाओं का मालिक है, वह इसका संचालन कर रहा है।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि, ''परमात्मा पहले अपने आप ही थे। अपना तमाशा देखने के लिए अपनी ही तरह सब कुछ पैदा किया। एक में से अनेक बने। जिस तरह एक घड़े में पानी पड़ा है, वह सारा पानी उस घड़े के सहारे खड़ा है। उसी तरह यह सारी सृष्टि एक ईश्वर के ही सहारे खड़ी है। परमात्मा के एक संकल्प से ही इस संपूर्ण सृष्टि का निर्माण हुआ है।

ज़रा देखो एक छोटे से छोटे सरसों के बीज को जब धरती में बोया जाता है, पानी की सहायता से उस नन्हें से दाने में से अनेकों दाने उत्पन्न होते हैं। इसी तरह किसी भी फल, उस के छोटे से बीज में इतने सारे पेड़ और फूल समाए हुए हैं। पहले-पहले तो इसका विश्वास ही नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य अगर अपनी सौ पीढ़ियों का हिसाब रखे तो विस्मय में पड़ जाएगा कि किस तरह एक स्त्री-पुरुष के जोड़े से हज़ारों संबंधियों के रूप में इतना बड़ा खानदान

चला आ रहा है। अब कुछ लोगों को शंका होती है कि जब परमात्मा स्वयं शुद्ध स्वरूप, सत् - चित आनंद, सर्वज्ञ, अंतर्यामी और सब शक्तियों के मालिक हैं तब इस जगत में पाप - पुण्य, राग - द्वेष, काम - क्रोध, लोभ - मोह इत्यादि कहाँ से आए?

गहराई से सोचकर देखेंगे कि 'कारण' के गुण दोष 'कार्य' में ही समाए हुए हैं। जैसे सफेद धागा लेकर कपड़ा बुनेंगे तो कपड़ा सफेद होगा। शुद्ध सोने के गहने शुद्ध ही बनेंगे, मिलावट करेंगे तो गहने भी मिलावटी ही बनेंगे।

अब विचार कर देखिए तो पृथ्वी में, भांति - भांति के बीज बोए जाते हैं। उन में से फल - फूल भी भांति - भांति प्रकार के मिलते हैं। कुछ कड़वे, कुछ मीठे, कुछ खट्टे इत्यादि। इसमें दोष पृथ्वी का है क्या? हमें यह बात भी बखूबी समझ में आती है कि हर एक बीज में पैदाइशी संस्कार पहले ही से मौजूद हैं जिस के आधार पर गुण - अवगुण उत्पति होती है। इसमें पृथ्वी का कोई दोष नहीं होता। ठीक इसी सिद्धांत से प्रत्येक मनुष्य की रचना उसके पूर्व संस्कारों अनुसार ही होती है। यह गुण - दोष के संस्कार पहले ही से हर मनुष्य के बीज में समाए रहते हैं। शास्त्र बताते हैं कि सभी प्राणियों में मनुष्य सर्वोत्तम है। परमात्मा ने उसके उत्तम होने की वजह से ही उसे स्वतंत्र इच्छा शक्ति दी है। स्वतंत्र कार्य करने की क्षमता दी है। सबल इंद्रियां, मन और बुद्धि भी दिए हैं। अगर कर्म और संस्कार सात्विक हैं तो ऐसा मनुष्य हर जन्म में सात्विक कर्म करते हुए शुभ कर्मों में लगा रहेगा। राजसी कर्म हैं तो सदैव स्वार्थी कर्मों में लगा रहेगा। पर अगर तामसी कर्म हैं तो

वह ऊपर बताए हुई बुराईयों में लगा रहेगा और उसकी मानवता का स्तर गिरता रहेगा। आखिर ऐसे स्तर पर आ जाएगा जहाँ से उसे निम्न योनियों में जन्म लेना पड़ेगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के सोलवें अध्याय के १९वें व २०वें श्लोक में स्वयं वर्णन किया है, ''ऐसे दुराचारी द्वेषी पापियों को इस संसार में बार-बार आसुरी योनियों में फेंक देता हूँ। ऐसे जीव मूर्खतावश जन्म-जन्म में नीच योनियों में रहकर, प्रभु को न जानकर, नीच गति पाते हैं। जो सत्य मार्ग पर नहीं चलकर अपनी मनमानी करता है, वह दुगर्ति को प्राप्त होता है और अनेकों पीड़ाएं भोगता है।''

सृष्टि की रचना के समय मनुष्य दैवी-गुणों से भरपूर था। बुद्धि तो है ही ईश्वरीय अंश! उसमें युग बदलते, स्वतंत्र इच्छा के अनुरूप, विषयों के बहुत सारे सुख भोगने की लालच में, आसुरी गुणों का समावेश होता गया। एक दूसरे की देखा-देखी तथा एक दूसरे के संग में, ऐसे ही मनुष्य बिगड़ते रहे। मनुष्य में से मानवता लुप्त होने लगी। इंद्रियां, मन, बुद्धि पशु-वृत्ति में गिरती रहीं और मनुष्य का व्यवहार भी पशुओं जैसा हो गया है।

फिर भी भगवान ने एक रास्ता खुला छोड़ा है लौट आने के लिए! वह है सत्संग, अभ्यास और वैराग्य! प्रत्येक महापुरुष पुकार-पुकार कर कह रहा है, ''प्यारे, लौट आओ तुम अपने असली रूप में! लौट आओ! तो तुम अपने खोए ख़ज़ाने फिर से पाकर आनंद भोग सकोगे।''

शास्त्र भी कहते हैं, ''अभ्यासी मनुष्य को हर दिन अपने व्यवहार और आचरण पर नज़र रखनी चाहिए। खोज कर

देखो कि कौनसी आसुरी वृत्तियां आकर शामिल हुई हैं और कौनसी दैवी वृत्तियां दब कर रह गई हैं।''

जिस तरह पहाड़ खोदते-खोदते ख़ज़ाने मिलते हैं, वैसे ही जिज्ञासु अभ्यास करते-करते अपने अंदर दबे हुए ख़ज़ाने खोज निकालते हैं। जैसे सोने को जितना मारेंगे, कूटेंगे और तपाऐंगे, उतना ही उस में से मिलावट वाला पदार्थ जलेगा और फिर निज सोना असली रूप में प्रकट होगा। वैसे ही जिज्ञासु, भक्ति, ज्ञान और अभ्यास की अग्नि में आसुरी अवगुणों को जलाकर, भस्म कर, निज दैवी गुणों में वापस आ जाते हैं। यह गुण उपकार रूपक है जो मनुष्य में मनुष्यता के प्रकाश को साफ ज़ाहिर करता है, अथवा जहाँ भी उद्यम, साहस, धीरज, बुद्धि, हिम्मत और पराक्रम जैसे गुण हैं, वहाँ परमात्मा स्वयं आकर सहायक बनते हैं।

अंत में ज्ञान द्वारा बुद्धि, बुद्धि द्वारा मन, मन द्वारा सभी इंद्रियों को निर्मल बनाकर मनुष्य परम तत्व को प्राप्त करता है। संस्कारों और प्रारब्ध के कर्मों से मुक्ति पाकर मोक्ष पद का अधिकारी बनेगा।

मनुष्य मिली हुई ईश्वरी बुद्धि के साथ मिली स्वतंत्रता का दुरुपयोग करके अपने रचयिता को भूल कर, माया के लाभ में, दसों दिशाओं में भटकता रहता है। लालच, झूठ, विकार और मोह की सम्पत्ति मन में इकट्ठी करता है। भोग विलास, ठगी, धोखे में सारी उम्र गंवा देता है। फिर जब परमात्मा हिसाब मांगते हैं तो जवाब नहीं दे पाता। पर परमात्मा ने फिर भी एक रास्ता खुला छोड़ा है, ''ऐ बंदे, लौट आओ! इस विनाशकारी राह से लौट आओ! विकारों, संस्कारों की मैल उतारकर आ जाओ! मन को उज्जवल

कर वापस लौट आओ तो मैं तुम्हें अपने आप में मिला लूं! ऐ भूले हुए जीव! याद करो कि तुम मेरे ही स्वरूप हो! अज्ञान में फंसकर अपनी राह भूल गए हो! अब भी अज्ञाननिद्रा का त्याग करो! अपनी असलीयत को याद करो! लौट आओ! लौट आओ!!''

कर्मों का खेत है यह - जो बोए सो पाए!

वह ब्राह्मण जाति की स्त्री थी। उसका घर राजा के महल के पास में ही था। उसे खाने का बहुत शौक था। ब्राह्मण के कर्म करते हुए भी उसे मांस का स्वाद बहुत पसंद था। बकरी, भेड़, मुर्गी और खरगोश के छोटे बच्चों का गोश्त बड़े शौक से खाती थी। उसके इस जिव्हा के रस ने उसके पति मधुसुदन की भी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। एक बार उसकी पड़ोसन गोमा ने बाहर कचरे के डिब्बे में पड़ी हड्डियां देखीं। ब्राह्मणी के पास जाकर गोमा उसे टोकते हुए बोली, ''आप लोग ब्राह्मण होकर भी मांस का आहार क्यों खाते हैं?'' ब्राह्मणी ने सौगंध खाकर गोमा से कहा, ''अरे, तुम्हें यह ख्याल भी कैसे आया? हम ब्राह्मण, जन्म से वैशणव मांस का आहार कैसे करेंगे? यह हड्डियां किसी और ने या सफाई करने वाले जमादार ने डाली होंगी।'' पर आखिर एक दिन गोमा ने उन्हें पकड़ लिया। खाना खाने के समय किसी बहाने से उनके घर आ गइ और गोश्त पकाते ब्राह्मणी को पकड़ लिया। ब्राह्मणी पहले तो भौंचकी सी हो गई, पर फिर जल्द ही बात को बनाते हुए बोली, ''क्या करूं?

एक गुप्त बीमारी लग गई है। वैद्य ने डर दिलाया है कि अगर मांस नहीं खाओगी तो जल्द ही मर जाओगी। देखती हो कितनी कमज़ोर हो गई हूँ!''

एक सुबह सबेरे ब्राह्मणी घर के बाहर खड़ी हुई थी। सामने उसे एक छोटा-सा हिरण का बच्चा कूदता हुआ नज़र आया। ब्राह्मणी उसे देखते ही मोहित हो गई। उसके मन में यह विचार आया कि अगर इस हिरण के बच्चे का मांस खाऊं, तो कितना मज़ा आएगा! नर्म-नर्म ज़ायकेदार, रस भरा गोश्त कितना अच्छा होगा! झट से अंदर जाकर अपने पति को बुला लाई और कहा, ''यह देखो कितना सुंदर हिरण का बच्चा है! समझते हो कि इसके मांस का ग़ोश्त पका कर खाऐंगे तो कितना मज़ा आऐगा! आप अगर उसे फंसा लाओगे तो मैं बहुत खुश हो जाऊंगी।'' मधुसुदन ने कहा, ''पागल हो गई हो क्या? क्या मुझे फांसी पर लटकाना है? यह राजा का हिरण है। हिरण को मारेंगे तो क्या यह बात छुपी रहेगी? बेकार के ख्याल छोड़ दो। मैं पता करूंगा। किसी कसाई से कितने भी दाम पर तुम्हारे लिए हिरण का मांस लाकर तुम्हें खिलाऊंगा।''

पर स्त्री हठ क्या समझता है? ब्राह्मणी अपना चरित्र दिखाने लगी। बर्तन-बर्तन से टकराकर अपने पति के सामने अपनी नाराजगी का प्रदर्शन करने लगी। स्त्रियों के छत्तीस चरित्र प्रसिद्ध हैं। एक दिन अपने पति को रोते हुए बोली, ''मर जाऊंगी तो फिर पछताओगे और मेरे लिए आंसू बहाओगे। वैद्य ने सच में कहा है कि हिरण का मांस खाने से तुम इस बीमारी से छुटकारा पाओगी। आप तो उसका कोई उपाय करते ही नहीं हो!'' ब्राह्मण आखिर अपनी पत्नी की बातों

में आ ही गया। एक दिन सुबह सबेरे ही जंगल में ज़रूरी काम के लिए गया। वही हिरण का बच्चा वहाँ पर खेल-कूद रहा था। झट से उसने अपनी शाल उसके ऊपर डाल दी और उसे अपने बस में कर लिया। उसे अच्छी तरह से लपेट कर, दौड़ता हुआ घर आ पहुँचा। अपनी पत्नी से बोला, ''जल्द करो, खिड़कियां और दरवाज़े बंद करके इसे खत्म कर दो जैसे कोई देख ना पाए।'' ब्राह्मणी खुशी से फूली न समा रही थी। जल्द ही एक बड़ी सी छुरी ले आई। दोनों ने मिलकर उस हिरण के बच्चे को काट कर बोटी बोटी कर लिया। ब्राह्मणी ने उस मांस को अलग-अलग प्रकार से पकाया और बहुत दिनों तक उसे शौक से खाकर अपनी इच्छा पूरी की।

तीन दिनों के बाद गोमा ब्राह्मणी के पास आई और बोली, ''सुनती हो राजा ने ढिंढोरा पिटवाया है कि तीन दिनों से उसके बाग का हिरण खो गया है। उन्होंने सारे नगर में खोजा है, पर अब तक नहीं मिला है। राजा ने आदेश निकाला है कि, ''जो इस हिरण को जीवित ढूंढ निकालेगा उसे हज़ार मोहरें और जो उस के बारे में जानकारी देगा उसे पांच सौ मोहरें दी जाऐंगी।''

कहते हैं कि स्त्रियों के मन में कोई बात टिकती नहीं है। ब्राह्मणी के पति ने उसे मना भी किया था कि भूल कर भी इस बात का ज़िक्र किसी से भी नहीं करना। पर ब्राह्मणी के मुख से निकल गया, ''यह हिरण तो उन्हें कभी नहीं मिलेगा।'' कहते-कहते उसने अपनी ज़बान काट ली। गोमा समझ गई कि ब्राह्मणी को इस हिरण का अवश्य पता है, इसीलिए तो बोली कि यह हिरण उन्हें कभी नहीं

मिलेगा। गोमा भी बहुत चतुर थी। ब्राह्मणी की प्रशंसा करते उसे गले लगाते हुए बोली, ''तुम्हें तो पता है न कि मैं तुम्हारी अपनी हूँ, मुझे बताओ कि वह हिरण क्यों नहीं मिलेगा! तुम्हें कसम है अपने पति की! मुझे ज़रूर बताओ। मैं भी अपने पति की सौगंध खाती हूँ कि मैं किसी से कुछ नहीं कहूँगी।'' ब्राह्मणी फंस गई। उसे ताकीद करते हुए बोली, ''कसम खाई है, बात अपने दिल में ही रखना।'' फिर कैसे उसका पति हिरण को पकड़ कर ले आया और कैसे उन्होंने दो-तीन दिनों तक उसे मज़े से खाया, पूरी बात बता दी। ऊपर से बोली, ''हम तो ब्राह्मण हैं। पर बुरी बीमारी होने की वजह से वैद्य ने डर दिया था कि हिरण का मांस नहीं खाओगे तो मर जाओगे।''

गोमा मन में बहुत खुश थी कि, 'राजा तक यह बात पहुँचा कर पांच सौ मोहरें पाऊंगी।' दिल में बोली, ''कसम तो मैंने खाई, मगर मेरे पति जीवित ही नहीं हैं जो मुझे कोई कसम लगेगी।'' यह सोचकर सीधे राजा की हवेली में गई। वहाँ मंत्री से मिलकर, उसे पूरी बात जैसी सुनी थी, वैसी सुना दी। मंत्री ने कहा, ''यह तो तुम्हारी सुनी हुई बात है। अब जब इसे हम अपने कानों से सुनेंगे तब ही तुम्हें पुरस्कार दिया जाएगा।'' गोमा सोच में पड़ गई। कुछ सोचकर अगले दिन फिर ब्राह्मणी के पास आई। मीठी-मीठी बातें करने के बाद उसने प्यार भरी शिकायत की, ''मैं तो कितनी बार तुम्हारे पास आई हूँ, तुम एक बार भी मेरे घर पर नहीं आई हो। मेरी इच्छा है कि तुम एक बार आकर मेरे घर में अपने चरण घुमाकर जाओ तो मेरा घर भी पवित्र हो जाए। तुम ब्राह्मणी हो। घर पर आकर

हमें आशीर्वाद दो।'' ब्राह्मणी अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो गई। अगले दिन दोपहर के समय, काम-काज होने के बाद का समय दिया। गोमा पुरस्कार मिलने की लालच को मन में लेकर दौड़ती मंत्री के पास आई और उनसे कहा, ''कल दोपहर को ब्राह्मणी मेरे घर पर आएंगी। किसी तरह भी बातें निकालकर उनके मुख से हिरण वाली बात कहने को कहूँगी। आप खुद ही सुनकर मुझे इनाम दे देना।''

अगले दिन मंत्री गोमा के घर आए। दूसरे कमरे में दरवाज़े पर पर्दा डालकर उसके बैठने का प्रबंध किया गया। इतने में ब्राह्मणी आ पहुँची। गोमा ने उसका आदर-सत्कार किया। पापड़-पानी देकर अपने साथ खाट पर बिठाया और यहाँ वहाँ की बातें करने लगी। बात बदलते हुए उसने कहा, ''उस दिन तुमने बहुत अच्छी बात सुनाई, मैं तो भूल ही नहीं पा रही हूँ। हिरण का मांस बहुत स्वादिष्ट होगा न और वह भी छोटे से बच्चे का!'' इस पर ब्राह्मणी बोली, ''हाँ री, बहुत स्वाद था। याद करते ही मेरे मुँह में पानी आ जाता है। मेरे पति ने भी कमाल किया, कैसे उसे शाल में लपेटकर उस हिरण के बच्चे को ले आया।'' अचानक ब्राह्मणी की निगाह सामने हिलते पर्दे पर पड़ी। हवा के कारण पर्दा हिला और ब्राह्मणी को पर्दे के नीचे किसी के पैर नज़र आए। ब्राह्मणी एकदम समझ गई कि परदे के पीछे कोई तीसरा उनकी बातें सुन रहा है। तुरन्त उसने बात का रुख बदलते हुए कहा, ''गोश्त इतना स्वादिष्ट था कि मैं और मेरा पति एक दूसरे को खुश होकर खिलाते रहे। अचानक मेरे पति को मज़ाक सूझा। मैंने जैसे ही एक ग्रास बनाकर उसके मुँह में डाला तो उसने मेरा हाथ काट

दिया। मैं चीख पड़ी और झटके से नींद से जाग कर खड़ी हो गई। आश्चर्यचकित होकर मेरे पति ने पूछा, ''क्या हुआ?'' मेरी छाती धड़क रही थी। मैंने उसे अपना पूरा सपना सुनाया। गोमा आश्चर्य से ब्राह्मणी के मुख को देखने लगी। कुछ कह नहीं पाई। ब्राह्मणी इतना कह कर उठ खड़ी हुई और बोली, ''अरी, यह सब तो सपना था। उस दिन तुम जल्दी चली गई थी, इस लिए बात अधूरी रह गई थी।'' इतना कहकर ब्राह्मणी चलने लगी, यह कहते हुए कि ''देर हो रही है। वे आयेंगे तो मुझे ढूंढने लगेंगे।'' गोमा हार गई। पुरस्कार तो नहीं मिला बल्कि मंत्री ने उसे डाँटते हुए कहा, ''तुम औरतों की बातों पर विश्वास कदाचित नहीं करना चाहिए। पुरस्कार की लालच में तुमनें झूठी बात बनाकर मुझे सुनाई। तुम दोनों ही शायद मिली हुई हो।''

ब्राह्मणी ने गोमा को तो मूर्ख बनाया। चस्के और स्वाद के लिए बहुत सारे झूठ भी बोले और समझौते किए। परन्तु कुदरत ने उससे पूरा-पूरा हिसाब लिया।

एक सुबह जब दिशा करने के लिए ब्राह्मणी हमेशा की तरह पास वाले जंगल में गई। अभी जमीन पर बैठी ही थी कि उसे सामने से आती हुई हिरणी दिखाई दी। शायद वह उस बच्चे की माँ थी जिसका गोश्त ब्राह्मणी ने खाया था। पहले तो ब्राह्मणी ने ध्यान नहीं दिया। मगर फिर जब उसकी निगाह उस तरफ गई तो उसने देखा कि वह हिरणी उसे घूर कर देख रही थी। अचानक वह हिरणी दौड़ती हुई ब्राह्मणी की तरफ बड़ी। ब्राह्मणी को उठने का अवसर तक नहीं दिया। तेज़ दौड़ती हिरणी ने अपने सींग ब्राह्मणी के पेट में घुसा दिए। ब्राह्मणी मूर्छित होकर ज़मीन पर गिर

गई।

मधुसुदन बहुत इंतज़ार करने के बाद, ब्राह्मणी को वापस लौटते न देख, जंगल की तरफ गया। उसे इस हालत में देखकर बहुत दुःखी और हैरान हुआ। ब्राह्मणी ने कुछ समय बाद अपनी आँखें खोली। टूटे-फूटे शब्दों में अपने पति से कहा, ''हमने उस शिशु का घात करके उसका मांस खाया। आज उसकी माँ ने अपने बच्चों का घात करने वाले को पहचानकर अपना बदला ले लिया। मैं तुम्हें हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि आज के बाद किसी भी पशु का मांस मत खाना। बच्चे पशुओं को भी प्यारे होते हैं।'' ऐसा कहते हुए ब्राह्मणी ने प्राण त्याग दिए।

रचनाकार ने इस सृष्टि को सुंदर, सिलसिले और प्रबंध से बनाया है। मनुष्य मात्र की खातिर पृथ्वी को उपज का गुण बख्शा। पृथ्वी में से अनेक प्रकार की सब्ज़ियां, फूल, घास, फल आदि पैदा होते हैं। अनाज उपजता है, जो मनुष्य के लिए योग्य और प्राकृतिक आहार है। देखो पशुओं और पक्षियों में भी कितने शाकाहारी हैं। गाएं, घोड़े, गधे, भैंस, भेड़, बकरियां आदि व तोते, कबूतर, हंस आदि भूलकर भी मांस नहीं खाते। फिर उस मांसाहारी शेर को देखो। शेर के सामने पूरियां, पकोड़े, मालपोहे, पकवान, पुलाव आदि रखो तो वह मुँह फेर लेगा। मनुष्य ही है जो अशुद्ध बुद्धि अनुसार अपने आहार को न पहचान कर पशुओं का घात करता है, उसके मरे हुए मांस को पकाकर खाता है। आजकल के शिक्षित लोग कितने ही उदाहरण और प्रमाण देकर मांसाहार को उचित और योग्य बताएं, मगर समझदारी से देखेंगे तो पहले जीवित जीव की हत्या करते हैं (हत्या याने पाप),

फिर उसका आहार करते हैं (मुर्दा पशु पक्षी का)।

सधना पहले एक कसाई था। एक रात राजा के पास कुछ अतिथि आए। राजा ने सधने के पास बकरे का मांस लाने के लिए आदमी भेजा। सधने ने सोचा कि थोड़े से मांस के लिए पूरा बकरा कैसे काटूं? यह सोचकर उसने एक रान काटने के लिए छुरी हाथ में उठाई। बकरा हँस पड़ा। बकरे से आवाज़ आई, ''अरे सधना, एक जन्म में तू मेरा कंधा काटता है, अगले जन्म में मैं तुम्हारा कंधा काटता हूँ। आज यह कैसी नई रीति चल रहे हो कि एक रान काट कर मुझे पूरी रात तड़पाओगे। याद रखो, मैं भी अगले जन्म में तेरे साथ ऐसा ही करूंगा।'' सधने ने छुरी फेंक दी। अगली सुबह को घर-बार छोड़कर वनवासी हो गया।

आज के मनुष्य को विश्वास आए या न आए! लेकिन यह पूर्ण सत्य है कि जो पशु को खाते हैं, उन्हें भी आगे चलकर पशु बनकर कंधा कटवाना पड़ता है। अब तो मनुष्य जन्म में भी कितने कंधे कटवा रहे हैं। हर रोज़ कितनी हत्याएं, अत्याचार हो रहे हैं, यह सारा जन्म-जन्म के हिसाब का लेन-देन है जो किसी न किसी जन्म में चुकाना ही पड़ता है। यह अनादि काल से परंपरा चली आ रही है, जो आज बोऐंगे, वही हज़ार गुना हम पाऐंगे।

जो प्राणी धर्म से जीवन का व्यवहार करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

महात्मा सुक़रात !

वह शरीर से सुंदर तो नहीं था और ना ही कोई रूपवान था। कद का छोटा, सर बड़ा और चौड़ा, आँखे धंसी हुई, नाक चपटा और रंग सांवला। पर उसकी बुद्धि विशाल और आध्यात्मिक थी। साधारण वस्त्र पहनने वाला, हाथ में सदा एक टेढ़ी लकड़ी और कंधे पर गोदरी धारण कर फिरता रहता था।

ईस्वी सदी से करीब पाँच सौ वर्ष पहले, यूनान के एथेंस नामक शहर में सुक़रात का जन्म हुआ था। युवावस्था में वे एक सैनिक थे। एक बार परेड करते करते वे गिर पड़े, जिस की वजह से वे चौबीस घंटों तक बेहोश रहे। जब वे होश में आए तब उनका संसारी ज्ञान जाता रहा, उस के स्थान पर उनकी चेतना जागी और वे अलौकिक बातें करने लगे।

महात्मा सुक़रात एक स्वतंत्र व्यक्ति थे। बिना किसी डर के, सब लोगों को सत्य की जानकारी देने लगे। उनके लिए अब दुःख - सुख, यश - अपयश, प्रशंसा - निंदा, मौत व जीवन एक समान थे। उनमें अब जीवन - मृत्यु, विवेक - वैराग्य और सत्य के विषयों पर चिंतन करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई थी। सड़कों, रास्तों, गलियों और बाज़ारों में खड़े होकर उन विषयों के बारे में हर किसी से सवाल पूछते। मगर कोई भी उन्हें उचित जवाब नहीं दे पाता था। निराश होकर कहते, ''क्या यह सारी मानव जाति अज्ञान के अंधेरे में लिपटी हुई है? आम लोगों की तो दूर की बात, पर उस

समय के काज़ी, मुल्ले, विद्वान, हाजी आदि भी कुछ बता नहीं पाते थे।

नगर में महात्मा सुक़रात का विरोध बढ़ने लगा। पर वह निडर, निर्भय अपने सिद्धांत पर अड़े रहे। महात्मा सुक़रात का विवाह बहुत पहले हो चुका था और उन्हें तीन बच्चे भी हुए थे। उनकी पत्नी का नाम जिनटेप था। वह अपने पति से सदा नाराज़ रहती थी क्योंकि उनकी कमाई कम होने की वजह से वे उनकी ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाते थे।

महात्मा सुक़रात का नामाचार शहर में काफी फैलने लगा। आम गरीब जनता उन्हें चाहने लगी। अक्सर लोगों के समूह रास्तों पर, चौराहों पर खड़े होकर उनका प्रवचन सुनते रहते थे। पर मज़हबी, कट्टरवादी और धंधे व्यापार में कपट करने वाले धनवान महात्मा सुक़रात के खिलाफ होते गए। सत्य का झूठ पर प्रहार सहने के लिए वे तैयार नहीं थे। कितने नौजवान भी तंग आ गए क्योंकि वे सड़क पर उनकी बाँह पकड़ कर, सत्य का प्रचार करते थे। इन कट्टरवादियों और कपटी लोगों ने मिलकर उनके खिलाफ आंदोलन शुरू कर दिया। एक तरफ शहर के कितने श्रद्धालू इस महात्मा की तरफदारी करने लगे तो दूसरी तरफ ये विरोधी उनकी शिकायतें शहँशाह से जाकर करने लगे।

महात्मा सुक़रात से भांति-भांति के सवाल करते थे। ''इस संसार की रचना कैसे हुई, और किसने की? जीवन क्या है? मृत्यु क्या है? आदि... उसके जवाब में महात्मा सुक़रात कहते थे कि, ''इन सवालों का उत्तर ढूंढ़ने की बजाय आप इस बात पर विचार करो कि इस मनुष्य जीवन में

आप अपना और दूसरों का कितना कल्याण कर सकते हैं? सचाई से जीवन में रहते हैं या नहीं? असली सवाल तो यही हैं।''

एक बार किसी भविष्यकर्ता ने ज़ाहिर किया कि, ''इस समय का महान बुद्धिमान महात्मा सुक़रात ही है।'' उस पर महात्मा सुक़रात हँसकर बोले, ''भाई, इस शहर में मेरे से भी अधिक बुद्धिमान बहुत सारे लोग हैं। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा है, वरन् मेरे पास क्या है?''

महात्मा सुक़रात सत्य के पुजारी थे। जीवन में सत्य का आचरण, व्यवहार करने का जहाँ-तहाँ प्रचार करने लगे। शहर के सत्ताधारी, भ्रष्टाचारी और मिथ्याचारी उस की आलोचना करने लगे और उन्हें बुरा-भला कहने लगे। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा कि यह मज़हब के खिलाफ प्रचार करके आम लोगों को बिगाड़ रहा है क्योंकि उस समय के मज़हबी और सत्ताधारी विलासी और भोगी थे। पाप कर्म और रिश्वत खा कर धन इकट्ठा करते थे। फिर भला उन्हें सत्य का संदेश कैसे पसंद आता?

उनके खिलाफ सरकारी फरमान निकला कि, ''रास्ते पर खड़े होकर प्रचार कार्य बंद करो, नहीं तो पकड़ कर जेल में डाल दिए जाओगे।''

पर निडर और सत्य का यह पुजारी कहाँ रुकने वाला है! इसके उत्तर में उन्होंने कहा, ''क्या मैं अपने विचारों को प्रकट करने के लिए परतंत्र हूँ? संसार में हर व्यक्ति अपने विचार प्रकट करने के लिए स्वतंत्र है।'' सरकारी फरमान दोबारा आया कि, ''अपना प्रचार बंद करो! शहर के लोग इस प्रचार से तंग आ गए हैं। अगर सरकारी फरमान का

अमल नहीं करोगे तो तुम्हें मौत के घाट उतार दिया जाएगा।''

जिन महापुरुषों ने सत्य को पहचाना है, वे कहाँ मौत से डरते हैं? उन में न तो देह बुद्धि है, न देह अभिमान! वे जीवित अवस्था में ही अपने को सत्य रूप आत्मा समझते हैं। शरीर तो केवल कर्म करने का यंत्र है।

आखिर एक दिन सुबह सबेरे जैसे आम लोग रास्तों पर आए तो उन्होंने देखा, कि जहाँ-तहाँ इश्तिहार और आम सूचनाएं लगी हुई थी। 'जैसे कि सुक़रात पर आरोप लगाया गया है कि वह मज़हब के विरोध में प्रचार कर रहा है, जवानों को बहका रहा है, इसलिए सरकार ने सुक़रात को प्राण दंड देने का फैसला किया है।'

यह इश्तिहार महात्मा सुक़रात ने भी पढ़ा। उस वक्त उनकी उम्र सत्तर वर्ष की थी और उनकी अवस्था जन्म-मृत्यु से बहुत ऊंची थी। उनके चहरे पर लेश मात्र भी रंज दिखाई नहीं दिया। परन्तु उनके श्रद्धालू अत्यंत दु:खी हुए। उन्होंने रो-रो कर महात्मा को घेर लिया। लेकिन यह महापुरुष हंसते-हंसते उन्हें आश्वासन देता रहा, ''इस संसार को एक सिद्धांत के साथ बांधा नहीं जा सकता। साधारणत: मनुष्य झूठ, कपट, धोखे और पाखंड का जीवन सिर्फ विषयों के क्षणभंगुर सुख के लिए व्यतीत करना चाहता है। लेकिन मैंने अपने अंदर सत्य की जो एक झलक देखी है, वह मैं अब लोगों को बताता हूँ। यह भौतिक सुख आखिर में आप के लिए कष्टदायक होगा। अगर सच्चा सुख पाना चाहते हो तो आध्यात्मिक राह पर चलो, सत्य की राह पर चलो। इंद्रियों के झूठे सुख से किनारा करो। जिनके अंदर अटूट निष्ठा और श्रद्धा है, वे ही अपने जीवन को सफल करेंगे।

यह शरीर नाशवंत है परन्तु यह आत्मा अमर है। इसलिए आप लोग लेश मात्र भी दुःख शोक न करें। मैं ईश्वरी कार्य करने के लिए संसार में आया हूँ। पर अब शायद मेरा यह कार्य पूरा हो गया है। ईश्वर ने ही सरकार की तरफ से मेरे लिए मौत का फरमान जारी किया है। लेकिन याद रखें 'मैं' मरने वाला नहीं हूँ। सुक़रात ने न ही जनम लिया है और न ही मौत पाएगा। आगे चलकर इतिहास इस संसार को बताएगा कि सच की राह पर चलने वाले कभी नहीं मरते।'' महात्मा सुक़रात को पकड़कर अधिकारियों के सामने प्रस्तुत किया गया। अधिकारियों ने उनसे पूछा, ''आप को क्या दंड दिया जाए?'' उस पर सुक़रात बोले, ''इस शहर की जनता को मेरा उपकार मानना चाहिए क्योंकि मैंने झूठ, पाप और पाखंड को नग्न किया है।'' यह सुनकर अधिकारी जलने लगे! उन्हें ज़हर पिलवाकर मारने का आखिरी फैसला सुनाया गया।

सुक़रात को कैद में बंद रखा गया, पर यह महात्मा वहाँ भी अपनी मस्ती में मग्न रहा। यह बात कौन जानता है कि असली शान जन्म लेने में है या मौत को पाने में है! उन्हे ज़हर पिलाने वाले तो कब के मर कर मिट्टी हो गए और लानत का घड़ा अपने सिर पर ले गए। मगर ज़हर पीने वाला आज भी अमर है। लाखों दिलों पर उनका राज्य है। वे आज भी श्रद्धालू लोगों के मन में जी रहे हैं। इतिहास के पन्नों में यह नाम सदैव अमर रहेगा।

जेल में रहते कई श्रद्धालू उनसे मिलने आते थे, जिन्हें वे सत्य का उपदेश दिया करते थे। उनकी पत्नी जो वैसे तो सदैव अपने पति से झगड़ती रहती थी, वह भी आकर

फूट-फूट कर रोने लगी। पति के लिए उनके मन में दबी हुई श्रद्धा आज उठकर बाहर आ गई। अन्य श्रद्धालू लोगों के बीच बैठकर वह भी अपने पति का प्रवचन सुनने लगी।

श्रद्धालूओं ने बहुत कहा कि जेल तोड़कर किसी और शहर में चले जाओ क्योंकि जेल के रक्षक भी उनमें श्रद्धा रखते थे। मगर उन्होंने जवाब दिया, ''जेल से सिर्फ अपराधी ही भागकर जाते हैं। मैंने तो कोई अपराध नहीं किया है।''

.....और अंत में वह घड़ी आ गई! जेलर ज़हर भरा प्याला ले आया। सुक़रात ने पूछा, ''क्या करना है?'' जेलर ने कहा, ''इसे पीकर थोड़ा चलना है। टांगें सुन्न होने लगें तो लेट जाना।'' जेलर ने प्याला देकर अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। उसकी आँखों में आंसू आ गए थे। सुक़रात ने एक ही घूंट में पूरा प्याला पी लिया। सामने अनेक श्रद्धालू रो कर यह दृश्य देख रहे थे। सुक़रात ने श्रद्धालूओं को आखिरी संदेश देते हुए कहा, ''जो कुछ मैं इस संसार को देने आया था, सो मैं दे चुका। जो देखने आया था, वह देख चुका। अब इस संसार को छोड़कर जा रहा हूँ। यह शरीर अवश्य मरेगा, मगर मैं अमर हूँ। मैं कभी भी मर नहीं सकता हूँ। इस जीवन से विदा ले रहा हूँ, पर मेरा हृदय आशाओं से, आनंद से भरा हुआ है। ऐ मृत्यु! तुम वास्तव में जीवन हो! तुम ही पूर्णता हो! तुमसे मिलने के लिए मेरी आत्मा व्याकुल हो रही है।'' ऐसा कहकर महात्मा सुक़रात ज़मीन पर लेटकर आखिरी श्वास लेकर शांत हो गए।

साधारण अवस्था में सुक़रात जैसे महापुरुष कभी-कभी जन्म लेते हैं। ऐसे मनुष्य तत्वदर्शी होते हैं। जीवन के सत्य

का प्रचार करके आम लोगों की चेतना को झंझोड़ते हैं। समकालीन जीवन की सत्यता को कुछ थोड़े ही लोग जानते हैं। जिन को इस सत्य की तलाश है, वे अपने हृदय को टटोलकर उसमें से अनमोल ज्ञानरूपी पदार्थ पाते हैं। उसी तरह जैसे जड़ पदार्थ का पता चलने पर खोजनिक पहाड़ खोदकर उसे पा लेता है। सुक़रात ने अवसर मिलते भी जेल से भागने से इन्कार कर दिया। पर जेल को अपना आखिरी पड़ाव समझकर निश्चिंत रहे। आगे चलकर सुक़रात की कुर्बानी रंग लाई। यूनान के बौद्धिक और नीतिप्रस्थ व्यवहार में एक नया मोड़ आ गया। उनके शिष्य प्लेटो ने महात्मा सुक़रात के जीवन दर्शन का बड़ी धैर्यता से प्रचार किया। दूसरे शिष्य जेनोफन ने भी अपने गुरू की शिक्षा का प्रचार करने के लिए जी-तोड़ मेहनत की। इन दोनों शिष्यों की मेहनत से गुरू की शिक्षाएं पुस्तक के रूप में लाई गयी। उनकी शिक्षा और विचारों को आम लोगों के आगे विस्तार से पेश किया गया। बहुत समय पश्चात्, आम लोग इस महापुरुष के जीवन को समझने लगे, और उनकी सिखाई हुई बातों का गंभीरता से अध्ययन करने लगे। महात्मा सुक़रात अपना जीवन बलिदान करने के बाद बहुत चमके और महान बने। महापुरुषों के जीवन को न समझने का मुख्य कारण है आम लोगों की बुद्धि में गिरावट। जैसे-जैसे संसारी लोग बाहरी पदार्थों के सुख के पीछे दौड़ते हैं वैसे-वैसे उनकी चेतन (विवेक) बुद्धि कमज़ोर होती जाती है। यही कारण है कि आज महापुरुषों की शिक्षाएं और विचारों को लोग नहीं समझ पाते हैं। परिणाम सामने है, कि अक्सर किसी को भी सच्चा सुख और मन की शांति प्राप्त नहीं होती।

कर्मों पर निर्धारित है यह खेत!

महाराज अधिराज की नगरी सैकड़ों कोस फैली हुई थी। नगर के सब लोग सुखी थे। अपने राजा की व्यवस्था और संचालन से सारी प्रजा खुश और संतुष्ट थी। इस नगर के कर्मचारी भी ईमानदार और कड़ी मेहनत करने वाले थे। इसीलिए राजा हर वक्त निश्चिंत और बेफिकर रहते थे।

राजा के नगर में सैकड़ों कोसों में एक शाही जंगल भी था। इस जंगल में बहुत ही वनस्पति, फल, फूल, सब्ज़ियां, अनाज इत्यादि पैदा होते थे। इस पैदाइश से इतनी आमदनी होती थी कि सारे नगर का संचालन बहुत शान से चलता था। सब खर्चा करने के बाद भी राजा की सम्पत्ति बढ़ती ही गई। प्रजा को नाम मात्र कर या टैक्स भरना पड़ता था। बहुत वर्षों तक इसी सुंदर तरीके से कारोबार चलता रहा। लेकिन एक वर्ष ऐसी बात हुई कि राजा के मन में कुछ शंका हो गई। जंगल की आमदनी में थोड़ी-सी कटौती आई, हालांकि इसका कोई प्राकृतिक कारण नहीं नज़र आ रहा था। राजा ने एक विश्वासपात्र मंत्री को भुलावा भेजा और उससे इस बारे में बातचीत की। मंत्री सयाना और ईमानदार था। सारी बात पर सोच-विचार करने के बाद मंत्री को भी शक होने लगा कि जंगल के कर्मचारी मिलकर इस जंगल की आमदनी का कुछ हिस्सा हड़प कर रहे हैं। मंत्री ने राजा को सलाह दी कि वह एक नए कर्मचारी का वेश धर के जंगल में नौकरी करेगा। राजा को यह सलाह पसंद आई। अगले रोज़ मंत्री वेश बदलकर एक मज़दूर

के रूप में काम करने लगा। हर रोज़ टोकरियां भर-भर कर सामान ढ़ोने लगा। मेहनत से काम करने के साथ-साथ, वह अन्य कर्मचारियों पर भी नज़र रखने लगा। एक बार उसने देखा कि कुछ माल गलत तरीके से जंगल से बाहर भेजा जा रहा था। माल खरीदने वाले से छुपा-छुपा कर पैसे भी लिए जा रहे थे। इस तरह पूरा महीना काम करते सारा रहस्य निकालकर, राजा को पूरी घटना सुनाई। राजा सुन कर विस्मित हो गए। उन्हें बहुत दुःख हुआ कि जंगल के एक सौ पचास कर्मचारी मिलकर यह लूट कर रहे हैं।

कुछ दिनों के बाद राजा ने वन के कर्मचारियों को बुलवा कर, उनकी प्रशंसा करते हुए कहा, ''जैसे कि इस वन का कारोबार बढ़ गया है, हिसाब-किताब रखना कठिन हो रहा है। इसलिए मैं कल से इस वज़ीर को नियुक्त करता हूँ, जो हर रोज़ वहाँ की देखभाल करेगा। रोज़ के माल का हिसाब और आंकड़े लिख कर पूरा समाचार मुझे देता रहेगा। वज़ीर को एक तेज़ दौड़ने वाला घोड़ा भी देता हूँ, जैसे वन के एक छोर से दूसरे छोर तक आसानी से आ जा सके।''

ज़ाहिर है कि सभी कर्मचारियों के चहरे उतर गए, पर दिखावे के लिए कहने लगे, ''हमें हुज़ूर का हुक्म कबूल है।''

अगले रोज़ से वज़ीर अपने असली रूप में, घोड़े पर चढ़कर वन की सैर करने लगा। सब्ज़ियां, अन्न जहाँ इकट्ठा किया जाता था, वह सब तौलकर एक किताब में दर्ज करता जाता था। कर्मचारी अपनी उपरी कमाई मंद होती हुई देख, कुछ रास्ता निकालने की सोचने लगे। हर रोज़ जब वज़ीर

चला जाता तो आपस में बैठ कर विचार - विमर्श करने लगे।

कहा जाता है कि, 'लोभ ही पाप का मूल कारण है।' एक बार यह पाप मन में आया तो वह दूसरे अन्य पापों को जन्म देता है। अपनी हराम की कमाई का रास्ता बंद होते देख, सब कर्मचारी आपस में मिलकर षडयंत्र रचने लगे। किसी ने कहा, 'उसका कत्ल कर दिया जाए', किसी अन्य ने कहा, 'उसे पानी में ज़हर मिलाकर पिलाया जाए।' मतलब तो यह सारे कर्मचारी वज़ीर को 'कबाब में हड्डी' कहकर उसे किसी भी तरह से हटाने का षडयंत्र रचने लगे। एक ने सलाह दी, "पहले वज़ीर साहब की प्रशंसा करके खुश किया जाए। बाद में अपनी खुशी मनाने के लिए एक महफिल का आयोजन किया जाए। वन के आखिरी छोरे में एक पहाड़ी है। वहीं पर इस कार्यक्रम का प्रबंध किया जाए। किसी बहाने से वज़ीर को पहाड़ी के उपर लाकर, उन्हें वहाँ से धकेल दिया जाए। इतनी ऊंचाई से गिरकर उनका बचना मुश्किल है। राजा को रोकर बतायेंगे कि वज़ीर साहब का पैर वहाँ से फिसल गया और वे गिर पड़े।" यह सलाह सभी लोगों को पसंद आई।

अगले दिन से सब कर्मचारी वज़ीर से अत्यंत मीठे स्वर में और आदर के साथ पेश आने लगे। सीधा - सादा ईमानदार वज़ीर इस पाखंड को पहचान नहीं पाया। बल्कि उसने तो समझा कि शायद वे लोग सही राह पर आ गए हैं। कुछ दिनों बाद एक संध्या को जब वज़ीर काम से लौट रहा थे, तब सब मिलकर उसके पास जाकर न्योता देने लगे, "साहब, कल हमारी खुशी का उत्सव है। आपको हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि आप हमारी खुशी में अवश्य

शामिल हों। यह उत्सव हम हर वर्ष वन के दूसरे छोर पर मनाते हैं।''

वज़ीर बेचारा उनकी बातों में आ गया। और अगले दिन कर्मचारियों के उत्सव में भाग लेने की हामी भर दी।

सुबह को सभी कर्मचारी पहले ही वहाँ पहुँच गए। ज़मीन पर कालीन और गलीचे बिछाए गए। तरह-तरह के खाने के पदार्थ तैयार करवाए गए। ठीक समय पर वज़ीर भी अपने घोड़े पर सवार होकर आ पहुँचे। मौज-मस्ती की महफिल शुरू हो गई। नाच, गाना, हँसी, मज़ाक करके एक प्रकार की खुशी दर्शा रहे थे। सभी कर्मचारी इस पाखंड में शामिल थे। अब सभी लोगों को भोजन परोसा गया। वज़ीर को उन्होंने खास चांदी की थाली में भोजन परोसा। बहुत स्वादिष्ट, लज़ीज़ और ज़ायकेदार भोजन बनाया गया था। वज़ीर शौक से खाने लगे। खाना खा लेने के बाद हर कोई यहाँ-वहाँ टहलने लगा। कुछ कर्मचारियों ने वज़ीर के पास आकर कहा, ''साहब, उस पहाड़ी से देखिए तो नज़ारा कितना सुंदर नज़र आता है।'' वज़ीर उस कपट के खेल में फंस गए। आहिस्ता-आहिस्ता चलकर जैसे ही पहाड़ी की चोटी पर पहुँचे, वैसे ही किसी ने पीछे से उन्हें धकेल दिया। वज़ीर बेचारा नीचे खाई में गिर गया और मर गया।

कर्मचारी खुशी से नाचने लगे कि उनकी राह का काँटा हट गया। अब से वे अपना बेइमानी का धंधा फिर से कर सकेंगे।

संध्या को सभी कर्मचारी रोते-बिलखते हुए राजा के महल में आए। राजा को इस अकस्मात घटना की सूचना दी।

राजा यह दुःखद घटना सुनकर बहुत दुःखी हुए, पर इन पाखंडी कर्मचारियों को समझ नहीं सके।

इस घटना के पश्चात् क्या हुआ, यह जानकारी नहीं। मगर.....

इस बात को गुज़रे सदियां बीत गई हैं। उस दिन अचानक अखबार में एक ऐसी खबर पढ़ी, जिस की वजह से ऊपर कही गई पूरी घटना मेरे ज़हन में फिरने लगी। खबर यह थी कि एक हवाई जहाज़ गिर पड़ा है, जिसमें बैठे समस्त डेढ़ सौ यात्री सभी मर गए।

अंतरमन में विचार घोड़ों की भांति दौड़ने लगे। सब कर्मचारी एक साथ तो नहीं मरे होंगे। हर एक अपनी पूर्ण आयु जी कर मरा होगा। कर्मों के अनुसार जन्म लेकर, जीवन के सुख-दुःख भोगकर गया होगा।

हमारे शास्त्र बताते हैं कि कर्मों में कुछ 'संचित कर्म' होते हैं, जो एक बक्से में इकट्ठे हो, छुपे रहते हैं। जब उन कर्मों को करने वाले, फल भोगने के लिए, एक ही समय पर, एक ही जगह एकत्रित होते हैं तब ही उनका हिसाब पूरा होता है। इस सिद्धांत के आधार पर ही सदियों बाद जब ये प्राणी एक ही हवाई जहाज़ में आ कर इकट्ठे हुए, तब प्रकृति ने अपने हिसाब से 'संचित कर्मों' का फल इस तरह चुकाया।

आज मनुष्य के मन पर भ्रांति की चादर ओढ़ी हुई है। छुप-छुप कर बुरे कर्म करते हुए, ऐसा समझते हैं कि किसी ने कुछ नहीं देखा, इसलिए इनका कोई फल नहीं मिलने वाला है। पर परमात्मा का बनाया हुआ, यह कर्मों का सिलसिला अनादि काल से अटल, पक्का चलता आ रहा है।

कर्मों का सिलसिला बंद करने का एक ही तरीका है। शुभ कर्म करना और निष्काम भाव से करना! यह शरीर कर्म करने का एक हथियार और वाहन है। शरीर में मोह रखने के कारण ही इतने सारे पाप-कर्म होते हैं। क्योंकि हक़ीकत यह है कि हर एक, ये सारे सुख, शरीर के लिए ही चाहता है। हालांकि यह बाहरी सुख शरीर को रोगी बनाते हैं और जन्म-जन्म के कर्मों के बंधन में बाँधकर दृढ़ करते हैं।

मनुष्य जीवन की दुलर्भता पर कौन विचार करता है? पूरा जीवन बेकार के वाद-विवाद और बेबुनियाद सवालों की खोज में व्यर्थ चला जाता है। सच तो यह है कि हर मनुष्य जन्म, कर्म बंधन से मुक्त होने का एक अवसर है। इस जीवन का सच्चा सुख वे ही लोग पाते हैं जो परमात्मा की इस गुत्थी को जानते हैं।

झूठी जगत की रचना ने-भुलाया रचनहार को!

प्रकृति और परमात्मा अनादि है। उन दोनों का अंत आज तक कोई नहीं पा सका है। ये दोनों ऐसे हैं जैसे बाज़ीगर और बाज़ी, आग और उसली जलन! या सागर और उसमें उठती हुई लहरें। इस जगत का यह सिलसिला अनादि काल से चला आ रहा है। एक प्राणी आता है और दूसरा जाता है। इस पृथ्वी पर हर पल भुगतने वाले अनेक लोग मरते रहते हैं। उन के कर्मों का हिसाब देखेंगे तो वह भी अनादि

है। जैसे बाज़ीगर बाज़ी दिखाने के बाद सब कुछ अपने आप गायब करके चलता बनता है, उसी तरह महाप्रलय के समय पर प्रकृति कुछ समय के लिए गायब हो जाती है, फिर नई रचना के वक्त उसी रूप में प्रकट होती है।

बाज़ीगर जैसे करता है रचना -
भांति भांति के रूप दिखाकर -
समेट लेता है सारा पसारा,
स्वयं ही स्वयं रह जाता है आप!

गौतमी, एक विधवा अपने नन्हें से बालक के साथ एक गांव में रहती थी। गांव वालों से भिक्षा मांग कर, अपना गुज़ारा करती थी। इसीलिए अपने बालक को अकेला झोपड़ी में छोड़कर जाया करती थी। एक दिन जब वह भिक्षा लेकर लौटी, तो उसने अपने बालक को सांप के डंसने की वजह से मरा हुआ पाया। गौतमी राने - पीटने लगी। गांव वाले जमा हो गए। एक बूढ़े ने सलाह दी कि पड़ोस वाले गांव में अर्जुन नाम का एक सांपों के मंत्र जानने वाला रहता है। वह सांप को बुलवाकर, जहर निकलवा सकता है। तुरन्त एक पड़ोसी तेज़ रफ्तार वाली घोड़ी पर सवार होकर, सर्पों के मंत्र जानने वाले अर्जुन को ले आया। मंत्र पढ़े गए। सांप एक बिल से निकल आया। ज़हर निकालने पर भी बालक सुजींत नहीं हुआ। मंत्रों की मदद से अर्जुन ने सांप से पूछा, ''तुमने इस नन्हें से मासूम बालक को क्यों डंसा?'' नाग ने उत्तर दिया, ''जिस वक्त इसकी मृत्यु लिखी हुई थी, उसी समय यमराज का हुक्म हुआ। इस में मेरा क्या दोष है?'' अर्जुन ने मंत्र पढ़कर यमराज से यह सवाल किया, ''इस मासूम शिशु को इस छोटी सी आयु में आपने

अपने पास क्यों बुलाया?'' आकाशवाणी हुई, ''इसके पूर्व जन्म के कर्मोंनुसार इसकी आयु इतनी ही थी। और इसी प्रकार इस की मृत्यु होनी थी। ईश्वर के बनाए हुए विधनानुसार मुझे जिस तरह की आज्ञा दी जाती है, उसी तरह मैं हर जीव का अंत लाता हूँ।''

कुछ लोगों के मन में शंका होती है कि जब कर्मों का फल हर हाल में भुगतना ही पड़ता है तो फिर भक्ति, उपासना, प्रार्थना या सेवा की क्या ज़रूरत है? पर हक़ीकत यह है कि ये भी एक प्रकार के कर्म हैं। कुछ कर्म अपने बैरी होते हैं और कुछ आपकी सहायता करते हैं। जैसे कोई इन्सान किसी सुनसान सड़क पर जा रहा था। वहाँ कुछ चोर बदमाश उसे घेर लेते हैं। उससे पैसे वग़ैरह छीनकर उसकी बहुत पिटाई करते हैं। पर अगर वहाँ दो-चार भले लोग आ जाएं तो ज़रूर उसकी सहायता करते और उसे लूटने और पीटने से बचा लेते। ठीक इसी सिद्धांतानुसार भक्ति, उपासना और दूसरे शुभ कर्म भाग्य में लिखे कर्मों को भोगने में, न सिर्फ सहायक बनते हैं, परन्तु फिर से बुरे कर्मों को करने से रोक लेते हैं। संस्कारों की मलीनता दूर होती है और बुद्धि निर्मल बन जाती है।

मनुष्य ज्यादातर खोटे कर्म करता है। उसके चार कारण हैं, १) बड़प्पन, पदवी इत्यादि; २) शारीरिक सुख और भोग, ३) धन-दौलत, सुख-सम्पत्ति; ४) बुद्धि की कमज़ोरी। संसार में पदवी पाने, बड़ा बनने के लिए कितने ही लोग अयोग्य रास्ते अपनाते हैं। सच को झूठ और झूठ को सच करने के लिए अपनी पदवी और बड़े होने का बहुत इस्तेमाल करते हैं। दूसरा शारीरिक सुख भोगने के लिए भी मनुष्य

कितने गलत मार्ग अपनाते हैं। धन पदार्थ में उनके नेत्र डूबे रहते हैं। बुद्धिहीन होने की वजह से उन्हें जायज़ और नाजायज़ कर्मों की पहचान नहीं रहती। नाजायज़ कर्म जो हमारे जीवन में होते हैं, उनका एक ताज़ा उदाहरण यह है:

एक कन्या किसी दफ्तर में काम करती थी। शाम को उसका मैनेजर (जो काफी बड़ी उम्र का था) उसे अपनी गाड़ी में घर तक छोड़ जाता था। उस कन्या का रिश्ता चल रहा था, मंगनी भी हो गई। उनके पड़ोस में एक दादी रहती थी। उससे लड़के वालों ने, लड़की के बारे में पूछताछ की। बात-बात में वह बोल बैठी, ''और तो सब कुछ ठीक ही है, पर दफ्तर से हर रोज़ एक मर्द के साथ, उसकी कार में बैठ कर लौटती है।'' नतीजन वह रिश्ता टूट गया। इस कन्या की उम्र बढ़ती गई, और वह कुंवारी ही रह गई। कुछ वर्षों बाद इस दादी की बेटी की शादी हुई। दो ही वर्षों में उसे उसके पति ने तलाक़ दे दिया। दो बच्चों को लेकर वह माँ के घर लौट आई। इस बार दादी ने यह सवाल किया, ''मैंने क्या गुनाह किया था जो भगवान ने मुझे ऐसी सज़ा दी?''

ईश्वर ने हर एक को बुद्धि दी है। परिवारिक, सामाजिक, सभ्यतिक या राजनैतिक बातों में बहुत बारीक़ी से अक्ल का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि स्वार्थ और अपने सुख के अंध में आकर मनुष्य जब किसी और का काम बिगाड़ता है, उस वक़्त उसे परिणाम का विचार नहीं आता। संसार में व्यवहार करते, अपने फर्ज़ निभाते या परमार्थ करते अक्ल की ज़रूरत होती है। अक्ल और 'बुद्धि' का सही उपयोग

न करने के कारण, जीवन में कितने खोटे और गलत कर्म किए जाते हैं। अक्ल से ही धर्म का सही निर्वाह होता है। धर्म पर अटल रहने की शक्ति प्राप्त होती है। जीवन में रस आता है। अगर किसी फल में रस और स्वाद है तो वह हमें अच्छा लगता है, नहीं तो उसे कोई पसंद नहीं करता। ज्ञान, भक्ति या निष्काम कर्म में भी अक्ल और समझ से चलेंगे तो आसानी से अपनी मंज़िल तक पहुँच जाएंगे।

विद्वान कह गए हैं कि मूर्ख नौकर, घमंडी राजा, खोटी स्त्री और कपटी मित्र, यह चारों ही दुःखदाई होते हैं। उन का एक सुंदर उदाहरण है। एक मंत्री को एक नौकर की आवश्यकता थी। ढूंढते - ढूंढते उन्हें एक नौकर पसंद आ गया। काम - काज तो बराबर करता था, मगर उसमें अक्ल की कमी थी। एक बार कोई अतिथी घर आया तो उन्होंने नौकर से कहा, ''बादाम तोड़ कर ले आओ।'' नौकर बादाम छिलकर, अंदर के बादाम फेंक कर, छिलके प्लेट में रख कर ले आया। मंत्रीजी ने उसे डाँटते हुए कहा, ''मूर्ख, अंदर का फल खाया जाता है और छिलके फेंके जाते हैं।'' दूसरी बार उसे कुछ खजूर लाने के लिए मंत्री ने कहा। नौकर बाहर का माल फेंक कर, अंदर की गुठलियां प्लेट में डालकर ले आया। मालिक के गुस्सा करने पर नौकर ने कहा, ''साहब, आपने ही पिछली बार ऐसा करने को कहा था।'' तब मालिक ने कहा, ''जब कुछ करने को कहूँ तब ही करना।'' एक बार मालिक और नौकर घोड़ों पर सवार हो कर बाहर घूमने निकले। घोड़े ने छलांग मारी तो मालिक का बटुआ जेब से निकलकर गिर पड़ा। नौकर ने सोचा कि मालिक ने

कहा है, कि उनके बोले बिना कुछ नहीं करना। इसलिए बटुआ गिरा देखकर भी चुपचाप चलता रहा। आगे जाकर जब मालिक ने जेब में हाथ डाला तो देखा कि उसका बटुआ जेब में नहीं था। नौकर को फटकारते हुए बोले, ''मूर्ख, बटुआ गिरा तो तुमने उठाया क्यों नहीं? कोई चीज़ गिरती है तो उसे फौरन उठा लेना चाहिए।'' रास्ते में लौटते घोड़े ने लीद़ गिराई तो तुरन्त नौकर ने वह कपड़े में उठा ली। घर पहुँचकर नौकर ने कहा, ''रास्ते में घोड़े ने यह चीज़ गिराई, जो संभालकर उठा लाया हूँ।'' मालिक ने तंग आकर नौकर को निकाल दिया।

इस पृथ्वी (मृत्यु लोक) के कुछ नियम हैं, बंधन हैं, एक निश्चित किया हुआ विधान है, काल का अनादि चक्कर है। आद - जुगादि से लाखों करोड़ों मनुष्य मोक्ष के लिए आराधना, पूजा - पाठ, यज्ञ और हवन करते रहते हैं। लेकिन हर एक के जीवन में रुकावटें, मुश्किलें और दीवारें भी हैं। उन्हें पार करने के लिए बहुत सूक्ष्म अक्ल और बुद्धि की आवश्यकता है। ऐसे घेरों और हदों को पार करने के लिए, सूक्ष्म बुद्धि वाली हिम्मत और साहस की ज़रूरत है।

अनादि काल से इस पृथ्वी पर अनगिनत मनुष्यों ने जन्म लिया है। प्रत्येक मनुष्य का जीवन उसके ही कर्मों की कहानी रही है। परमात्मा ने सृष्टि की रचना करते समय हर एक को एक सी बुद्धि और अक्ल का अंश प्रदान किया है। फिर भी किसी दो मनुष्यों का जीवन एक समान नहीं रहा है। हर एक के कर्म, विचार, व्यवहार अलग - अलग रहे हैं। कितनी न अदभुत, विचित्र लीला है इस सृजनहार की!

गहराई से विचार कर देखेंगे तो मनुष्य की रचना ईश्वरीय

गुणों और बुद्धि से की गई है। यह ईश्वरीय संपदा हर मनुष्य को मिली हुई है। उपयोगता की कमज़ोरी की वजह से आज का मनुष्य हक़ीकत से भटक गया है।

परमात्मा की रचना और हैरत भरी जादूगरी यह है कि एक बूंद में से इतना सोने जैसा शरीर तैयार होता है। फिर अग्नि कुंड में बढ़ता है, पलता है और सही वक्त पर जन्म लेता है। यह सिलसिला आज का नहीं पर अनादि काल से चलता आ रहा है। यह सारा संसार उस बाज़ीगर की बाज़ी है। बाज़ी को समझने वाले, बाज़ी का रस और आनंद भोग सकते हैं। पर बाज़ी में फंसने वाले कैदी बनकर सज़ा और दर्द सहते हैं। ईश्वर इतना दयालू है कि सिर्फ मनुष्य जीवन में इतनी ऊंची और विशाल बुद्धि बख़्श की है। उस के साथ यह आज़ादी भी दी है कि इस देन का उपयोग कैसे किया जाए।

कोई भी सयाना इन्सान मालिक की देन को भुला कर नमकहराम नहीं बनेगा। पर हम तो जन्म-जन्म में मालिक का नमक खाते हैं और यह मनुष्य देह उस अहसान को उतारने के लिए ही मिलती है। उसका उद्देश्य है सच को जानना और उसे पाना। पर हम तो उलटे अधिक पाप और बुरे कर्म करते जाते हैं, और उस सत्य रूपी मालिक से दूर होते जाते हैं।

इसलिए इस जगत की कर्मभूमि में बाज़ीगर के विशाल नाटक का आनंद लेते हुए हर वक्त यह ख़्याल रखना चाहिए कि यह एक पूरा नाटक (जिस में हो 'न - अटक) है। एक दिन यह सब गायब हो जाएगा और बाज़ीगर रह जाएगा। जो इस जन्म चक्र में नहीं अटकेगा, वह बाज़ीगर का दर्शन

कर पाएगा।

न तो रोओ, न मचाओ शोर, न आंसू बहाओ, जैसे दिन आएं, वैसे तू गुज़ार। पक्का जान कि, ''जो कर रहा है, वह बाज़ीगर है। तुम उसकी बाज़ी का हिस्सा हो। अक्ल, बुद्धि से यह जान कर हमेशा आनंद में रहो।''

बातें करें हर कोई - किसी किसी तन में है याद!

१. माता-पिता को बहुत समय बाद संतान हुई। फूले नहीं समा रहे थे। ग़रीब होते हुए भी, सारे गांव को दावत दी। बालक का शांत चेहरा, सुंदर आभा और चेहरे पर मुस्कराहट देख कर सब प्रशंसा कर रहे थे। माता-पिता ने बहुत प्यार से उसका लालन-पालन किया। बालक का नाम 'धीरज' रखा गया। आहिस्ते-आहिस्ते धीरज बड़ा होने लगा। बैठना, खड़े होना और चलना सीखा, पर बोल नहीं रहा था, सिर्फ मुस्कराता रहता था। माँ बाप हैरान-परेशान हो गए। बहुत सारे जादू-टोने, दवाईंयां कीं, पर बच्चे के बात करने के कोई आसार नहीं दिख रहे थे। आखिर सब समझ गए कि बच्चा गूंगा है। अब तो गांव वाले दया भाव से भी बच्चे से ज्यादा प्यार करने लगे। धीरज अब नौ साल का हो गया। गूंगा होने की वजह से किसी पाठशाला या स्कूल में नहीं गया। पूरा दिन सुबह से शाम तक गांव की गाय, भैंसों के साथ जंगल में घूमता-फिरता रहता था।

एक दिन अचानक कहीं से एक सुंदर बांस की लकड़ी ले आया। उसमें अपने हाथों से छेद कर, उसे बांसुरी बना दिया। उसे अपने होठों से लगाकर अजीब से स्वर निकालने लगे। गांव वाले हैरत में पड़ गए, कि, ''यह कैसा चमत्कार है? धीरज ने न किसी से सीखा न किसी संगीतकार के पास गया, फिर भी ऐसे मधुर और मन मोहने वाले स्वर कैसे निकाल सकता है?'' दिनोंदिन धीरज की कदर बढ़ने लगी। गांव के मंदिर के बाहर एक संगमरमर का चबूतरा बनवाया गया। सुबह-शाम गांव वाले धीरज को वहाँ बिठाकर बांसुरी के मधुर आलाप में खो जाते थे। धीरज स्वयं भी उस संगीत में ऐसा खो जाता कि खाना-पीना भी भूल जाता था। कभी सुबह, कभी संध्या तो कभी रात तक बैठ कर बांसुरी पर तान आलापता रहता था। कभी-कभी तो रात को उस चबूतरे पर ही सो जाता था। उसके साथ दो-तीन श्रद्धालु भी आकर सो जाते थे। धीरज का नाम आस-पास के गांवों में भी फैलने लगा। लोग दूर-दूर से आकर उसकी बांसुरी के मीठे स्वर और आलाप का आनंद उठाते थे। बहुतों ने कोशिश की कि धीरज कुछ बोले, उन्हें आशीर्वाद दें, पर धीरज केवल मुस्कराता रहता था।

इसी तरह धीरज बीस वर्ष की आयु का नौजवान हो गया। गांव का मंदिर अब एक बड़ी इमारत बन गई। मंदिर के अंदर अब शाही आंगन संगत के बैठने के लिए बनवाया गया। हर रोज़ शाम को सैकड़ों श्रद्धालु आकर बैठते थे।

एक दिन मंदिर में लोगों का समूह इकट्ठा हो गया।

उन्होंने देखा कि चबूतरे पर बांसुरी तो पड़ी थी, पर धीरज का कहीं पता नहीं था। चारों तरफ ढूंढा, मंदिर के अंदर, बाहर, सारे गांव में, गांव के जंगल में। पर कितने दिनों तक धीरज का पता नहीं चला। श्रद्धालु ऐसा समझने लगे कि वह स्वर्ग का कोई देवता होगा, जो हमें अमृतमय संगीत का आनंद पिला कर अंतर्ध्यान हो गया। आस-पास के गांवों में भी धीरज का कोई पता नहीं चला तो सब लोगों ने आशा छोड़ दी। गांव वालों ने मिलकर एक दिन धीरज की याद में सभा बुलाई। सभा में सबने मिलकर यह फैसला किया कि, ''जैसे यह महापवित्र बांसुरी सदा उस देवता स्वरूप धीरज के हाथों में हुआ करती थी, इसलिए इस बांसुरी के लिए एक ऊंचा स्थान बनवाकर उसकी पूजा की जाएगी। इस बांसुरी को हीरे-जवाहरात से जड़ दिया जाएगा। हर दिन श्रद्धालु यहाँ आकर, इस बांसुरी को देवता स्वरूप धीरज का जानकर पूजा अर्चना करेंगे। जो जैसी श्रद्धा रखेगा, वैसा ही फल पाएगा।'' बस, फिर तो एक ऊंचा सिंहासन बनवाया गया। बांसुरी को हीरों और जवाहरातों से जड़ा गया। हर रोज़ श्रद्धालु आकर बांसुरी पर फूल, हार, चंदन और तिलक लगाने लगे। कुछ तो बांसुरी के ऊपर वस्त्र भी डालने लगे। इस तरह कुछ वर्ष और बीत गए।

.....और एक दिन अचानक संध्या के समय, जब लोगों का समूह बैठा हुआ था, सबने देखा कि सामने से मैले वस्त्र पहने, बड़े और उलझे हुए बालों वाला एक नौजवान आ रहा था। उसके नज़दीक आने पर

सभी एक ही सुर में पुकार उठे, ''महात्मा धीरज आ गए।''

मगर धीरज ने न किसी की आवाज़ सुनी, ना मुस्कराया, न ही किसी की तरफ देखा। लोगों की भीड़ को चीरता हुआ सीधा सिंहासन के पास आया। वस्त्र हटाकर बांसुरी को अपने हाथों में उठाया और होठों से चूम लिया। धीरज ने बांसुरी को बजाने की कोशिश की। बहुत ही फूंका, मगर हीरे जवाहरात ने बांसुरी की आवाज़ ही बंद कर दी थी। आज धीरज पहली बार बोला! बांसुरी की तरफ बहुत ग़मगीन नज़रों से देखकर कहने लगा, ''इन सब लोगों ने मिलकर तुम्हारे स्वर और आलाप बंद कर दिए।'' ऐसा कहकर बांसुरी वापस रख कर, तेज़ी से दौड़कर मंदिर के बाहर चला गया और रात के अंधकार में लुप्त हो गया। .....और फिर उसे किसी ने कभी भी नहीं देखा।

२. अखंड पाठ का भोग चल रहा था। बहुत सारे प्रेमी आए हुए थे। देखा गया कि भोग चलते समय भी प्रेमी एक दूसरे के साथ बात-चीत कर रहे थे। पाठ पर किसी का ध्यान ही नहीं था। पर जब भोग की समाप्ति हुई तो सब उठ कर कतार में खड़े हो गए रूमाल चढ़ाने के लिए। रूमाल, हार, फूल वग़ैरह ग्रंथ साहब पर चढ़ाए जा रहे थे। थोड़ी ही देर में सत्तर, अस्सी रूमालों का एक बड़ा ढेर श्री गुरु ग्रंथ साहब के ऊपर, जिसे हम जागृत ज्योत समझते हैं, बन गया। अपने आप से सवाल पूछा जाए कि, ''अगर कोई सचा शारीरिक रूप में संत हो तो क्या उसके ऊपर हम इतने सारे

रूमालों का बोझ रखते? क्या हमारी श्रद्धा सिर्फ यहीं तक ही सीमित है?

इस काल में, संसार में जो व्यवहार चल रहा है, उस में ऊपरी व्यवहारिक श्रद्धा से, मनुष्य ने ग्रंथों, गीता और शास्त्रों की आवाज़ बंद कर दी है। मनुष्य के लिए कौन सी शिक्षा, उपदेश और मार्गर्शन का वर्णन किया गया है, उस तरफ कौन ध्यान देता है? फिर हर एक साधू, संत, अभ्यासी या प्रचारक, अपने ही मतलब का अर्थ समझा रहे हैं। असल सूक्ष्म अर्थ तो शायद ही कोई बताता होगा। गुरू को तन, मन, धन अपर्ण करने का गलत मतलब बता कर आज कितने ही गुरू, अपने शिष्यों को खोखला कर स्वयं धनवान बन जाते हैं। शास्त्र, तन अर्पण करने का सही अर्थ बताते हैं कि, ''यह शरीर सेवा के लिए मिला है। इस तन से ग़रीबों, बीमारों, अपाहिजों की सेवा करो।'' लेकिन स्वार्थी लोग तन अर्पण करने का गलत अर्थ बताकर स्त्रियों को शारीरिक संबंध करने का उपदेश करते हैं। पुरुषों से सारा दिन अपनी सेवा कराते रहते हैं। यह है आज कल के श्रद्धालु लोगों का व्यवहार! कलियुग में पाखंडियों का बड़ा ज़ोर है। पापाचार दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। लोगों के मन में उलझन बढ़ गई है। असली धर्म की व्याख्या न करके सिर्फ अपना पूजन कराने में व्यस्त हैं आज कल के प्रचारक!!

३. कलकत्ते शहर में एक नौजवान लड़का नौकरी करता था। वह युवक आलसी और सुस्त था। इसी कारण वह किसी भी नौकरी में ज्यादा दिन नहीं टिक पाता था। कहीं

पर छः महीने तो कहीं एक साल, ऐसे बहुत ही जगहों पर नौकरी करता रहा। शादी वहीं की लड़की से की, जिसमें से उसे तीन पुत्रियां पैदा हुई। नौजवान को अब कहीं भी नौकरी नहीं मिल रही थी, जिस कारण वह दोस्तों, मित्रों, सगे-संबंधियों से उधार लेने लगा। पर वह भी कब तक देते? अब दुकानों और घरों में जाकर अपना हाल सुनाने लगा, ''मुझे बीमारी हो गई है, इसीलिए में कमा नहीं पा रहा हूँ। आप अगर थोड़ी सी मदद करेंगे तो कृपा होगी। बच्चे भूखे मर रहे हैं।'' दयावश कुछ दिनों तक उसे दान में कुछ न कुछ मिलता रहा। पर वह भी कब तक? आखिर हर तरफ से निराश हुआ। मेहनत तो उससे हो नहीं पाती थी। आखिर उसने एक युक्ति सोच ली। एक भगुआ रंग का लंबा सा चोला बनवाकर पहनने लगा। दाढ़ी रखवाई और अपनी पत्नी व उसकी सखी के द्वारा पास पड़ोस में यह बात फैलाई कि, 'उसे साईं बाबा के दर्शन हुए हैं। और घर की साईं बाबा की मूर्ति से विभूति निकल रही है। धीरे-धीरे यह समाचार बहुत लोगों के कानों तक पहुँचा। अब तो लोग उसे घर बैठे पैसे, फल, अनाज और वस्त्र पहुँचाने लगे। यह बिलकुल सच्ची बात है। सब को विभूति की पुड़ियां और काले धागे देता है। किसी न किसी को तो ज़रूर इनसे लाभ हुआ होगा, जैसे लॉटरी की टिकट तो लाखों में बिकते हैं, पहला या दूसरा पुरस्कार तो दो-तीन लोगों की ही मिलता है। प्रारब्ध अनुसार किसी भी एक श्रद्धालु को जँच गई तो एक की जगह हज़ार श्रद्धालु बन जाएंगे। आज के ज़माने की यही रीति है।

४. एक महात्मा हर रोज़ सुबह-शाम सज-धज कर, तिलक लगाकर, मालाएं पहनकर लोगों को उपदेश देता था। लेकिन कथा करने के बाद भोजन कर सीधे जाकर सो जाता था। एक दिन सबेरे कुछ सत्संगी उनसे मिलने आए। पर यह साहब तो गहरी नींद में खर्राटे ले रहे थे। धीरे से दूसरे संत ने उन्हें जगाते हुए कहा, ''भाई, उठो, जल्दी तैयार हो जाओ, तुम्हारे गुरू आए हैं।'' वह संत जल्द ही तैयार हो कर, तिलक लगाकर, माला पहन कर बाहर आए। आकर देखा तो आठ-दस सत्संगी हैं। बैठकर उनको उपदेश करने लगा कि, ''आलस और प्रमाद से दूर रहो। सदैव सजग रहो, इत्यादि'' ये प्रेमीजन भेंटाएं रख, आशीर्वाद लेकर चलते बने। तब इस कथा करने वाले संत ने दूसरे संत से पूछा, ''आपने पहले क्या कहा?'' धीरे से उस संत ने कहा, ''भाई, आप पहले और आखिर में आलस और प्रमाद करते हो। आपका ज्यादा समय नींद में व्यतीत होता है। सिर्फ संगत के आगे, बन-ठन कर बैठते हो। आप इन बड़े लोगों से डरते हैं, तो वे आपके गुरू हुए ना! आपके अंदर दिखावा करने की वासना है, शेष है तो आलस और प्रमाद का अंधकार, सिर्फ बीच में उजाले का दिखावा! ऐसा कब तक चलेगा? फिर आज आपने उपदेश भी उलटा ही दिया।'' इस पर पहला संत बहुत शर्मिंदा हुआ और दूसरे संत से माफी मांगी।

इन वार्ताओं का अर्थ यही है कि सिर्फ लोगों को दिखाने और खुश करने के लिए कर्म नहीं करने चाहिए। इनसे पाखंड और पाप की वृद्धि होती है। दिखावे की आदतें पक्की हो

जाती हैं। सारी मेहनत पानी में बह जाती है।

सैकड़ो चतुराईयां कर, आलसी और सुस्त हुए
सिर्फ मुंह से उगलते रहे, ज्ञान, ध्यान, जप और तप,
जगाकर अपने अंदर को, नहीं निकालते कपट,
सामी कहे जैसे सर्प, विष ओढ़ व्याकुल हुए।

खोज, खोज कर पाओ ख़ज़ाना!

एक दुःखी दरिद्र इन्सान रोज़ी-रोटी के लिए दर-दर भटक रहा था। बहुत भटकने के बाद उसकी एक दरवेश से भेंट हुई, जिसे उसने अपने दुःखों की दास्तान् सुनाई। दरवेश ने उस पर दया करके उसे अकथ धन पाने का रास्ता बताया। दरवेश ने उसे बताया, ''वन में एक किला है, वहाँ एक कुदाल और तलवार लेकर जाओ। किसी खास जगह पर जाकर खुदाई करो। वहाँ से तुम्हें यह अनमोल ख़ज़ाना मिलेगा। खोदते हुए पहले कुछ सुंदर सलोनी स्त्रियां निकलेंगी, जिन्हें तुम अपने साथ ही रखना। उस के बाद कुछ पुरुष निकलेंगे, जिन का सिर तुम तलवार से काट देना। अंत में तुम्हें वह ख़ज़ाना मिलेगा।'' दरवेश के कथनानुसार वह ग़रीब एक कुदाल और तलवार लेकर वन की तरफ गया। काफी अंदर जाने के बाद, एक ऊंची-सी जगह से उसने खोदना शुरू कर दिया। सचमुच पहले एक रूपवान, शर्मीली सुंदर स्त्री निकली। पूछने पर उसने बताया कि, ''मेरा

नाम 'लज्जा' है और मैं आँखों में निवास करती हूँ।'' महात्मा का कहा याद कर उसने उसे पास में बिठा लिया और फिर खोदना शुरू किया, तो एक भयानक शक्ल वाला पुरुष निकल आया। पूछने पर उसने बताया, ''मैं 'काम' हूँ और मैं नेत्रों में निवास करता हूँ।'' इस ग़रीब ने सोचा कि अगर यह नेत्रों में निवास करेगा तो 'लज्जा' बेचारी वहाँ कैसे रह सकेगी? कामी पुरुष को तो किसी की लज्जा शर्म होती ही नहीं। यह सोच उसने तलवार से उसका सिर काट दिया। आगे खुदाई करते हुए एक और सुंदर स्त्री निकल आई। उसने बताया कि उसका नाम 'दया' है और वह मुख में निवास करती है। ग़रीब ने सोचा, 'यह तो बड़ी सुशील और दयावान स्त्री है, यह साथ होगी तो बहुत सारे उपकार के कार्य कर सकूंगा, इसलिए इसे अपने साथ रख लेते हैं।' अधिक खोदने के बाद फिर एक पुरुष निकला, जिसने बताया कि वह 'क्रोध' है और उसका निवासस्थान मुख है। दरवेश की हिदायत याद करके उसने तलवार से उसका भी सिर काट दिया। आगे और खुदाई की तो तीसरी एक सुंदर-सी स्त्री प्रकट हुई, जिसने अपना नाम 'कीर्ति' बताया और कहा कि वह हृदय में निवास करती है। ठीक उसके बाद एक पुरुष प्रकट हुआ जिसने कहा, ''मैं 'लोभ' हूँ, मेरा निवास भी हृदय है।'' ग़रीब ने विचारा, '''कीर्ति' के साथ 'लोभ' कैसे रह सकता है?'' यह सोच उसने तलवार से 'लोभ' का सिर भी काट दिया। आखिर खुदाई करते चौथी रूपवती स्त्री निकल आई, जिसने अपना नाम 'धरती' (धीरज) बताया। उसने अपना निवास स्थान 'बुद्धि' बताया। उस के पश्चात् फिर एक पुरुष निकल आया। उसका

नाम 'मोह' था। दरवेश की बात याद करते हुए उस ग़रीब ने 'मोह' का भी सिर काट दिया। कुछ और खुदाई करने के बाद, एक शाही ख़ज़ाने का मटका हाथ लगा, जिसे देख कर वह ग़रीब बहुत खुश हुआ। ख़ज़ाना और चारों स्त्रियों को साथ लेकर वह घर गया। उसकी अभिलाषा पूर्ण हुई और वह आनंद से जीवन व्यतीत करने लगा।

यह दृष्टांत सुनकर हर एक चाहेगा कि, 'ऐसा महात्मा काश उसे मिले तो वह भी ऐसी सुंदर स्त्रियां और ख़ज़ाना पा ले।' पर सत्य तो यही है कि इस जगत रूपी वन में हर एक शरीर एक किला है। जगत में दुःखों और कष्टों की ठोकरें खाकर, जो आनंद रूप का ख़ज़ाना पाना चाहता है, वह महापुरुषों से शिक्षा पाकर, अभ्यास के द्वारा अपने अंदर की खुदाई (खोज) करके प्राप्त करता है। नेत्रों में लज्जा, शर्म और मर्म भी है, तो काम - वासना भी। अक्सर नेत्र बुराई की तरफ ही खींच ले जाते हैं। आज संसार में चारों ओर देखते हैं, तो हर तरफ बुरी वासना से भरे चित्र, दृश्य और बेढंगे वस्त्र पहने शरीर, शर्म - मर्म की सीमाएं पार, वासना के बहाव में तेज़ रफ्तार से सब को डुबाते जा रहे हैं। शायद ही कोई शर्म और लज्जा के दायरे में रहता है। क्रोध तो बस कंठ पर विराजमान ही है। यह जो संसार में इतने झगड़े, तकरार और लड़ाईयां हो रही हैं, यह सब क्रोध के कारण ही हैं। दया का तो जैसे अकाल ही पड़ गया है। कीर्ति याने यश! इस जीवन में अच्छे कर्म कर यश पाने का सही अंदाज़ तो शायद विरले मनुष्य को ही आता है। हर बात में लोभ का वास है, तृप्ति किसी को भी नहीं! न ही किसी के पास धीरज

है।

हालांकि यह सब गुण मानवता के हैं, और हर मनुष्य में मौजूद हैं। हिरन की नाभी में ही कस्तूरी होती है, पर अज्ञानतावश वह उसे बाहर ही खोजता रहता है। अगर मनुष्य में अंदर से लज्ञा और शर्म होती हैं, तो वह बुरे और खोटे कर्मों से दूर ही रहता है। दया का गुण रहेगा तो सदा दुःखियों और दरिद्रों की सेवा करके, कीर्ति को प्राप्त होगा। अच्छे कर्मों के कारण उसका लौकिक सुख-संपत्ति में मोह नहीं रहेगा। ऐसा मनुष्य सदा धैर्यवान और शीतल स्वभाव का होता है। जिन मनुष्यों में मानवता के गुण नहीं हैं, वह एक पशु के समान है। इस प्रकार के मनुष्य इस संसार में अधिक संख्या में पाए जाते हैं। मनुष्य अधिकतर तीन प्रकार के होते हैं। पहले, विशेष बुद्धि वाले हैं, जो हर वक्त मनुष्य जीवन के रहस्य को खोजने में लगे रहते हैं। वे आत्मा स्वरूप अमृत पी कर, अंदर की ज्वाला को बुझाकर अपना मनुष्य जीवन सफल करते हैं। दूसरे, ऐसे जीव हैं जो केवल जड़ पदार्थों का रस पीते रहते हैं। उनका ऐसा मानना है कि यह जीवन तो सिर्फ खाने-पीने और ऐश करने के लिए, और मौज मनाने के लिए है। तीसरे प्रकार के मनुष्य सदा पाप में फंसे रहते हैं। ये लोगों को लूटकर, गलत तरीके से धन कमाकर, हर प्रकार का शारीरिक भोग भोगते हैं। ऐसे प्राणी न इस लोक में सुख भोग पाते हैं, और न ही परलोक का खयाल करते हैं।

एक विद्वान ज्ञानी महापुरुष थे। उन के चार पुत्र थे। इस महापुरुष ने उन्हें बचपन से ही लेकर ज्ञान मार्ग में लगाकर, वेदों व शास्त्रों का खूब अध्ययन करवाया। पर हर

एक की बुद्धि और समझ अपने गुणों के अनुसार ही होती है, जिसके माध्यम से वह शिक्षा ग्रहण करता है। एक पुत्र ने अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। दूसरे ने शास्त्रों के कितने ही सूत्र कंठ कर लिए। तीसरा वक्ता बन कर व्याख्यान और वाद-विवाद करने में प्रवीण हुआ। चौथां बड़ा दानी, परोपकारी हुआ। काफी समय बाद उस महापुरुष ने चारों को अपने पास बुलाकर उनकी बुद्धि और बल को परखना चाहा। पहले से जब प्रश्न किया, ''बच्चे, तुम में कितना बल है?'' पुत्र ने उत्तर दिया, ''कितने भी लोग एक साथ आ कर मुझ पर हमला करें, मैं अकेला ही उन्हें मार भगा सकता हूँ।'' पिता बोले, ''बच्चे, शास्त्र कहते हैं कि पहले तुम अपने आप पर विजय पाओ, तो बाकी सारे लोग अपने आप तुम्हारे कदमों में झुक जाऐंगे। महापुरुषों में कितनी शक्ति है, जो हज़ारों लोग आकर, उनके सामने अपना सिर झुकाते हैं। शारीरिक बहादुरी से कहीं बेहतर है आत्मिक बल, जिससे तू मन और इंद्रियों को वश में कर।''

दूसरे पुत्र से सवाल किया, ''बेटा, शास्त्रों से तुमने क्या ग्रहण किया है?'' पुत्र बोला, ''मैंने कितने ही सूत्र कंठित किए हैं, और बिना किसी रुकावट के उनका उच्चारण कर सकता हूँ।'' पिता बोले, ''बच्चे, यह तो बहुत अच्छी बात है। पर अगर इल्म के साथ अमल नहीं तो पूरा परिश्रम व्यर्थ है। सूत्रों में जो शिक्षा दी गई है, उस पर अगर नहीं चले तो सिर्फ उनका उच्चारण करने से क्या लाभ होगा?''

तीसरे पुत्र से सवाल पूछने पर वह बोला, ''मैं बड़ा वक्ता बन गया हूँ और बहुत सुंदर व्याख्यान कर सकता हूँ।'' पिताजी बोले, ''बढ़िया और लुभाने वाले वाक्य बोलना

और दूसरों के दिलों को प्रभावित करने से क्या लाभ? लोग सिर्फ प्रशंसा करेंगे, जिससे तुम्हारा अहंकार बढ़ेगा। एक नर्तकी भी लोगों को प्रभावित कर सकती है। असली वक्ता तो वही है जो औरों का कल्याण कर सके। अपनी होशियारी और विद्वता दिखाकर, अपना जलवा दिखा कर, प्रशंसा पाने से क्या लाभ होगा? बेशक वक्ता बनो, पर दूसरों की निन्दा या आलोचना नहीं करनी चाहिए। किसी भी राय को गलत सिद्ध करने का यत्न भी नहीं करना चाहिए। अपनी बुद्धि अनुसार हर एक सही है। वक्ता को एक आदर्शवादी, धैर्य और स्नेह की मूर्ति बनना चाहिए।''

अब चौथे बेटे की बारी आई। उसने कहा, ''पिताजी, मैं समझता हूँ कि दया-दान ही मुख्य गुण हैं। ग़रीबों, लाचारों, बेवाहों, बीमारों और अपंगों की सेवा करना ही सच्चा धर्म है। शास्त्रों से मैं यही सीखा हूँ कि सब प्राणी परमात्मा के ही रूप हैं। इस लिए सेवा करना ही हर मनुष्य का विशेष कर्म है।'' पिता इस पुत्र की बातें सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। पर फिर भी पुत्र से बोले, ''बेटा, तुमने बराबर शास्त्रों की शिक्षा को सही रूप में समझा है। पर फिर भी अहंकार और अभिमान से अपने आप को बचाना होगा। मान, इज़्ज़त, सम्मान और आदर की जिज्ञासा सभी को रहती है। फिर दान देकर फल की इच्छा भी सभी को रहती है। इस लिए बच्चे, इस लालच से अपने को बचाने का हरदम प्रयत्न करना। ऐसा करने से तुम्हें महामानव बनंने का श्रेय प्राप्त होगा। याद रखना कि ऐसे मानवी गुणों के सिवाय, मनुष्य एक पशु के समान पृथ्वी पर बोझ है। मनुष्य वही है, जो अपनी सही पहचान करे। अपने को परखे,

अपने अंदर झांक कर अपने अंदर गुणों का ख़ज़ाना ढूंढे। इस विश्व व्यापी आनंदमय जगत में सुंदरता और खूबसूरती फैलाने के लिए, ईश्वर का एक साधन बने! कोई भी मनुष्य ऊंचा और महान अपने गुणों के कारण होता है। धन पदार्थ, सम्मान या संपत्ति से, आज तक कोई भी महान नहीं बन सका है। मरने के बाद उसे कोई याद नहीं रखता। पर ईश्वरीय गुणों वाला इन्सान अमर बन जाता है। युगों-युगों तक उन्हें याद रखा जाता है, उनकी पूजा की जाती है। हर एक मनुष्य के अंत:करण में एक ऐसी शक्ति है, जिसे चेतना शक्ति कहा जाता है। मनुष्य में प्रवृति का गुण है और निवृति का भी। प्रवृति अर्थात कर्मों में लगे रहना, निवृति का मतलब है, कर्म करते भी निर्लेप रहना अर्थात मुक्त रहना। मनुष्य जीवन में ये दोनों गुण साथ-साथ, एक ही मात्रा में चलेंगे तो वह आनंदमय जगत् का अमृत सहज में ही पीकर संतुष्ट रहेगा।

हर एक मनुष्य में उन्नति करने की चाहना है। इस इच्छा को लेकर मनुष्य बार-बार जन्म लेता है। पर इस मायावी संसार में पैदा होते ही, वह मूल इच्छा को भूल जाता है। जैसे हर एक मनुष्य अपने आप में से ही शारीरिक, मानसिक या काल्पनिक दु:ख पाता है, वैसे ही सुख भी अपने आप में से ही पा सकेगा। सब साधनों और शास्त्रों का वाचन, अभ्यास करने का लक्ष्य अपने आप को समझना, अपनी तलाश करना है। जैसे घर की सफाई करते वक्त, घर के हर कोने पर नज़र डालनी पड़ती है, ढूंढ-ढूंढ कर अच्छी वस्तु रख कर और बुरी व बेकार वस्तुएं फेंकी जाती हैं, वैसे ही अपने अंदर में खोज करेंगे तो बुरे संस्कार,

बुरी आदतें और बुरे विचार सामने आयेंगे। उन्हें निकाल बाहर करना है। जितना ही हम गहरा जायेंगे, उतना ही अपने आप को पहचानते जायेंगे। अचंभे में पड़ जायेंगे कि कैसे-कैसे नापसंद संस्कार हैं, जो हमारे अंदर छुपे बैठे हैं। उन्हें निकालेंगे तो शुद्ध और निर्मल गुण, अपने आप बाहर निकल आयेंगे और जीवन में सच्ची उन्नति करने की राह मिल जाएगी। सवाल यह है कि इस तरह में अपने आप से सच्चे लोग कितने हो सकते हैं? ऐसे बहादुर और हिम्मत वाले कितनें होंगे जो अपने अवगुण, बुराईयां और त्रुटियां मान लेंगे।

खेल है ख्यालों का सारा, इन ख्यालों ने ही किया है पसारा, सब ख्यालों को गुम कर दो, अपने आप को गुम कर दो, और दूसरा काम नहीं करो।

जाकी रही भावना जैसी - प्रभु सूरत तिन देखी वैसी !

साधक ने गुरू से प्रश्न किया, ''प्रभु, ध्यान करते समय मन पता नहीं कहाँ-कहाँ दौड़ता है? कैसे-कैसे ख्याल मन में उठते हैं? एक विचार जाता है तो दूसरा आता है। मन को ध्यान में कैसे लगाएं? आप कोई ऐसी युक्ति बताएं कि अभ्यास करके, हम ध्यान का आनंद ले पाएं।'' अधिकतर हर साधक या ध्यान का अभ्यास करने वाले की यही शिकायत रहती है। ध्यान लगाते समय मन की परख होती है कि मन की आदतें, स्वभाव और संस्कार कैसे हैं। आमतौर पर बहुत लोगों को यह भ्रांति है, कि आँखे मूंद कर किसी

भी निश्चित जगह पर बैठना ही ध्यान कहलाता है। इस बात से कई लोग धोखा खाते हैं। कुछ लोगों पर यह प्रभाव डाला जाता है, कि ध्यान लगाते समय, भिन्न-भिन्न रंग की रोशनियां और कई रूप देखे जाते हैं। सही में यह सब मानसिक प्रभाव का ही असर होता है।

वेदांत में ध्यान सातवें स्थान पर है। जैसे बालक को संसारी विद्या प्राप्त करने के लिए पहले नर्सरी, फिर प्रायमरी, उसके बाद सेकेन्डरी, और आखरी में कॉलेज में जाना पड़ता है, उसी तरह ध्यान की सीढ़ी पर पहुँचने के लिए यम, नियम, आसन, प्रतिहार और धारणा की सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं। इतनी सीढ़ियां चढ़ने के बाद ही मन ध्यान में जुड़ कर आखिरी सीढ़ी समाधि में स्थित होता है। पहली सीढ़ी पर से छलांग लगाकर ध्यान की सीढ़ी तक पहुँचना मुश्किल है।

आमतौर पर हर मनुष्य शरीर के निचली इंद्रियों में निवास करता है। मनुष्य की पहुँच पेट तक है। वह जो कार्य संसार में करता है, उनका लक्ष्य केवल पेट पालने और इंद्रियों के सुख भोगने तक ही सीमित रहता है। सारा जीवन तो क्या, पर पूर्व जन्मों में भी पेट पालन, संतान और सुख-संपत्ति पाने तक ही सीमित रहा है। वे सारे जन्मों के संस्कार और विचार एक ख़ज़ाने के रूप में अंतःकरण में दबे हुए हैं। ध्यान में बैठते समय दृष्टि अंदर की तरफ मोड़ दी जाती है, तो वही संस्कार, विचार और वृत्तियां आकर घेर लेते हैं।

ध्यान है आत्मा का निरीक्षण। आत्मा हर मनुष्य के मन के द्वार इंद्रियों में फंसी रहती है। हालांकि इंद्रियां, मन और

शरीर को सदा आत्मा ही देती है। इसलिए पहले बाहरी व्यवहार को शुद्ध रखना पड़ता है। शरीर का निर्वाह सच के आधार पर करना पड़ता है। सच बोलना, सच्चा व्यवहार, सादा और सात्विकी भोजन खाना इत्यादि। संग का भी ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि जैसा संग वैसा रंग होता है। अच्छे लोगों का संग करना पड़ता है। खोटे और बुरे विचारों वाले मित्रों, दोस्तों तथा संबंधियों का त्याग करना पड़ता है, यह यम कहलाता है।

दूसरी सीढ़ी है नियम! जैसे बालक स्कूल में दाखिल होता है, तो हर रोज़ नियम से स्कूल जाता है। एक मिनट भी देर करेगा तो मास्टरजी डाँटेगे। उसी प्रकार साधक को हर रोज का निश्चित किया हुआ नियम पालन करना चाहिए। एक दिन भी नियम छूट गया तो दस दिनों के अभ्यास की हानि होती है। ज़िंदगी में किसी भी कार्य के करने हेतु, जो नियम के पक्के होते हैं, उन्हें आसानी से सफलता मिल जाती है। यह मूल उसूल जीवन के हर कार्य में सहायता करता है।

तीसरी सीढ़ी है आसन! बालक को स्कूल में दाखिला मिलने के बाद उसे बैठने के लिए एक निश्चित स्थान दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार, साधक को घर के अंदर या किसी भी एक निश्चित स्थान पर, एक ही आसन पर बैठना चाहिए। आसन है शरीर को नियंत्रित रखने का साधन। ध्यान मार्ग की शुरूआत स्थूलता से होती है। एक आसन पर स्थिर बैठ कर, बिना शरीर हिलाए पहले शरीर को वश में करना पड़ता है। पहले थोड़ी देर के लिए और बाद में अवधि बढ़ानी चाहिए। ये तीन सीढ़ियां हैं अपने बाहरी

वातावरण, व्यवहार और शरीर को वश में करने के लिए। साधक को वहाँ तक पहुँचने के लिए परिश्रम करने में काफी समय लग सकता है। यह निर्भर करता है अपनी-अपनी लगन पर। अगर लगन और मेहनत सची है तो उसका फल जल्द ही मिलता है। यहाँ तक पहुँचने के बाद श्वासों की गति को वश में करने के लिए, प्राणायाम की सीढ़ी चढ़नी पड़ती है। इस सीढ़ी पर बहुत धीरज और धैर्य की आवश्यकता है। किसी विद्वान या अभ्यासी से हिदायतें लेकर श्वासों का स्मरण करेंगे, तो वहाँ पर ही खूब आनंद आने लगेगा। इस अभ्यास के करने से स्वास्थ भी अच्छा रहता है। यह अभ्यास अगर पूरा जीवन करते रहेंगे, तो शरीर सदा निरोगी रहेगा। हालांकि शुरू में कष्ट होगा, फिर भी अंदर में आनंद रहेगा। इस चौथी सीढ़ी चढ़ने के बाद, पांचवी सीढ़ी है प्रतिहार। यह मन का परिश्रम है। पहली चार सीढ़ियां चढ़ने के बाद, इस परिश्रम में बहुत मदद मिलती है। मन में जन्म-जन्म से इकट्ठे किए हुए संस्कारों और विचारों का कचरा निकालने में सहायता मिलती है। अंदर अपना निरीक्षण करना है। बैर, विरोध, वासनाएं, हसद, जलन, अहंकार अदि विकारों को निकाल फेंकना है। अच्छे विचारों को खुद ही जन्म देना पड़ता है। यह मन की कठोर साधना है।

एक बार स्वामी रामानंद हमेशा की भांति अपने शिष्यों के साथ ध्यान-अभ्यास में बैठे थे। ध्यान में अंदर ही अंदर स्वामी रामानंद अपने इष्ट देव की पूजा अर्चना करते थे। उस दिन पूजा, आरती, अभिषेक करने के बाद वस्त्र पहना कर, जैसे ही अपने इष्ट देव को हार पहना रहे थे, तो हार छोटा पड़ गया। गले से नीचे ही नहीं उतर रहा

था। बहुत परेशान हुए। आखिर विचार कर मुकुट उतार कर हार पहनाने लगे ही थे कि सभी शिष्यों में बैठे कबीर साहब चीखकर कहने लगे, ''गुरुदेव, मुकुट मत उतारो। हार को तोड़ कर गले में पहनाओ और पीछे से जोड़ लो।'' सारे शिष्य हैरान रह गए। यह बात सिर्फ स्वामी रामानंद और कबीर साहब ही समझ पाए। दोनों ही साथ में मुस्कराए।

इस तरह, मन को ध्यान में लेकर, संसार के सभी बंधनों और विचारों से मुक्त करके, अपने आत्मिक विचारों को पैदा करना चाहिए। जैसे ख्याली मंदिर, ख्याली ठाकुर, ख्याली पूजा, भजन, कीर्तन आदि। अपने इष्ट देव या सत्गुरु का ध्यान करना चाहिए। ख्यालों द्वारा ही उनसे अपनी शंकाओं का निवारण करना चाहिए। अगर ख्याल सच्चे हैं तो ख्यालों द्वारा जवाब भी मिलेगा। अगर यह नियम बहुत समय तक जारी रहा तो मन की स्थिति अपने आप बदल जाएगी। बुरे विकार एवं विकारी वासनाएं अपने आप मिट जाएंगी। मगर ज़िंदगी भर यह नियम पालन करना चाहिए। मन का विश्वास बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए क्योंकि किसी भी समय पर विकार और वासनाएं मन में प्रवेश कर सकती हैं।

एक महात्मा ने एक बिल्ली पाल रखी थी। महात्मा हर रोज़ संध्या के समय पाठ करते थे। बिल्ली को ऐसा अभ्यास करवाया था कि उसे सामने बिठाकर, उसके सिर पर दिया जलाकर रखते थे। महात्मा जब तक अपना पाठ पूरा करें तब तक बिल्ली शांत बैठी रहती थी। एक दिन एक और महात्मा इनसे मिलने आए। खुश होते हुए इस पहले महात्मा ने कहा, ''देखिए, मैंने कैसे इस बिल्ली को अपने वश

में किया है। पाठ करते समय इसके सिर पर दिया रखता हूँ, तो बिलकुल नहीं हिलती।'' महात्मा हँस पड़े। उन्होंने कहा, ''कल देखेंगे।'' अगले दिन महात्मा तौलिए में एक चूहा ले आए और उसे ज़मीन पर छोड़ दिया। बिल्ली चूहे को देख कर, चूहे के पीछे दौड़ी और दिया ज़मीन पर गिर पड़ा।

इस तरह हर वक्त साधना में सचेत रहना पड़ता है। हठ और अहंकार बिलकुल नहीं करना चाहिए। न ही कभी ध्यान अभ्यासी होने का दावा ही करना चाहिए।

धीरे धीरे किसी ने कहा कानों में,
जिसे तुम ढूंढते हो वनों, जंगलों में,
सो तो प्यारे, है तेरे अंदर में।

इंद्रियों को अंदर की तरफ ले जाने को ही प्रतिहार कहते हैं। अंदर जाकर जब सब इंद्रियां एक केंद्रबिंदु पर जमा हो जाती है, उसे धारणा कहा जाता है। यहाँ एक महाशक्ति पैदा होती है, जिस में पूरा मन केंद्रित होता है। मन के इस तरह एकटक होने को ध्यान कहते हैं। बाहरी वृत्तियां ही जब अंदर जाकर एक जगह इकट्ठी होती हैं तब ही इस ध्यान में सफलता मिलती है। मतलब यह है कि ध्यान के लिए मन का एकाग्र होना आवश्यक है। बाकी जब तक वृत्तियां बिखरी हुई हैं, बाहर के संसार में फैली हुई हैं, तब तक इस मार्ग में पूर्ण सफलता नहीं मिलती। बहुत सारे लोग कहते हैं, 'भाई, कलयुग में हर एक इन्सान मोह-माया में फंसा हुआ है। यह बातें साधारण मनुष्य के लिए मुश्किल हैं।' व्यावहारिक संसार में सब सुशिक्षित नहीं होते हैं। लाखों में से कोई एक डॉक्टर या वकील बनता है। जड़ पदार्थों

की खोज में भी करोड़ों में से कोई एक ही सफल होता है। फिर इस अध्यात्म साधना की क्या बात करें!

साधारण मनुष्य के लिए भी सरल उपाय है, अगर कोई करे तो! वह है, 'सत्संग, सेवा, संयम, साधना और स्वाध्याय।' नियमित रूप से हर रोज़ सत्संग करने से मन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। वेद शास्त्रों की शिक्षाएं महापुरुषों के मुख से सुनकर जीवन सुधरता है। पर सत्संग के साथ सेवा भी आवश्यक है। सेवा करने से मन का अहंकार दूर होता है। सेवा तन, मन और धन से होती है। तन की सेवा है दूसरों की मदद करना, औरों के कठिन कार्यों में बिना किसी अपेक्षा के उनकी मदद करना। धन की सेवा है ग़रीबों की देख-भाल करना। स्कूल, अस्पताल, धर्मशालाएं आदि बनवाना। समाज में किस बात की कमी है, उसे पूरा करना। मन की सेवा है सब का भला चाहना और प्रेम व हमदर्दी दिखाना। अपने से ज्यादा औरों के सुख की कामना करना। संयम का मतलब है अपनी इंद्रियों को वश में करना। इंद्रियां हैं रथ के घोड़ों की तरह। घोड़ों को वश में नहीं रखेंगे तो जाकर किसी खड्डे में गिर जाऐंगे। आजकल बीमारियों का मूल कारण है इंद्रियों की आवारागर्दी। इंद्रियों के गुलाम न बनकर, उनके मालिक बनकर उन्हें अपने आदेंशानुसार चलाना चाहिए। साधना का अर्थ है कि हर रोज़ कितने भी काम हों, नियमित समय पर पूजा, पाठ व योग-अभ्यास ज़रूर करें। उम्र के साथ साधना का समय भी बढ़ाते जाएं। अंत में है स्वाध्याय! जिस का अर्थ है, 'आत्म निरीक्षण।' जिस तरह चित्रकार बार-बार दूर जाकर अपने चित्र का निरीक्षण करता है, वैसे ही समय-समय पर, कोशिश करके,

बीते जीवन का हिसाब अवश्य करें। अपने किए हुए कर्मों पर विचार करें। फिर चाहे वे बुरे हों या भले! अपने आप से पूछें कि, ''मनुष्य जन्म किस लिए मिला है? जो कुछ हम कर रहें हैं, क्या वह मनुष्य जन्म के योग्य है या नहीं? संसारी सुख-संपत्ति से आखिर क्या लाभ होना है? क्या यह जीवन किसी के काम आ पाया है? इतना धन पदार्थ होने पर भी किसी ग़रीब लाचार की सेवा क्यों नहीं की है? अगर अगला जन्म मुझे घोड़े, गधे या कुते बिल्ली का मिले तो?'' इस प्रकार आत्म निरीक्षण करके जन्म-जन्म के बुरे संस्कार निकलते जाऐंगे।

अभ्यास सरल हो या कठिन, पर फल समय पर ही मिलेगा। थोड़ा कुछ मन फूल जाए और प्रशंसा हो, मान तथा प्रसिद्धि मिले तो पूरा परिश्रम पानी में! ऐसा अभ्यास करते हुए भी मन को सदा निर्मान और निवृत्ति से भरपूर रखना है। 'अगर रहन सहन न प्रियतम जैसा, सिर्फ कहने से क्या लाभ?'

आजकल संसार में ध्यान (Meditation) के लिए बहुत उत्साह बढ़ गया है। कितने ही ध्यान केंद्र अपनी प्रसिद्धि करके आम लोगों को आकर्षित कर रहे हैं। पर वास्तविकता से दूर 'वे ना ही स्वाध्याय करते हैं, न ही वेदान्त के नियमों पर चलते हैं। सीधी छलांग लगाकर उस ऊँचे अलौकिक शिखर पर पहुँचना चाहते हैं। यह दिव्य अमोलक ख़ज़ाना बिना मेहनत के प्राप्त करना चाहते हैं। समय ऐसा आया है कि इस 'परमात्म तत्व' को पाने के लिए हर कोई शार्ट कट (Short Cut) चाहता है। यह साधकों तथा शिक्षकों की बड़ी भूल है। वे इस बात को नज़र अंदाज़ करते हैं कि

मनुष्य के मन पर अनादि काल से अज्ञान का पर्दा चढ़ा हुआ है। मनुष्य और ईश्वर के बीच में अज्ञान की बड़ी रुकावट है। इसलिए सांसारिक विषय, वासनाएं, बुरी प्रवृत्तियां, गलत भ्रामिक विचार और सिद्धांत उभर रहे हैं, जो वास्तविकता से कोसों दूर धकेल रहे हैं। अतः पहले सही सिद्धांतों का अभ्यास करके रोज़ के जीवन में उनका विचार और मनन करके जन्म-जन्म की भ्रांतियों को दूर करना पड़ेगा। बुरे संस्कारों को साफ करके मन निर्मल करेंगे तब ही जाकर मन ध्यान अभ्यास से जुड़ेगा और आत्म साक्षात्कार के योग्य होगा और जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करेगा। ओम शांति!

सिख साका बहुत ही किए, केशव किया ना मीत,
चले थे हरि मिलन को, बीच में ही अटका चेत!!

जब तक है सांस शरीर में, तब तक करो भला!

दया धर्म का मूल है, पाप का मूल अभिमान,
तुलसी दया ना छोड़ियो, जब तक तन में प्राण!

दया का अंश हर एक धर्म के मनुष्य को मिलता है। परमात्मा ने इस जगत की ऐसी सुंदर व्यवस्था की है जिसका कोई अंत नहीं। एक तरफ मनुष्य प्रारब्ध के कष्ट, दुःख व पीड़ाएं भोगता है, दूसरी तरफ पुरुषार्थ द्वारा मनुष्य शुभ कर्म करके, दुःखियों, दरिद्रों की सेवा कर सकता है। किसी मुसीबत के मारे की सहायता करना, किसी दुःखी दिल से हमदर्दी जताना, किसी की तकलीफ में उनकी मदद करना,

किसी पीड़ित की सहायता करना, यह सब दया के अंश हैं।

परमात्मा से मिले धन पदार्थ से दान धर्म का ज़ज़्बा प्रत्येक मनुष्य में होना चाहिए। मन को विशाल रखना चाहिए। कलयुग में परमात्मा को प्रसन्न करने की एक और राह है कि सदैव दूसरों के सुख का ख्याल करें। पहले मुल्क के राजा और शासक प्रजा का ख्याल रखते थे। ऐसे भी राजा हुआ करते थे जो रात को वेश बदलकर प्रजा के दुःख - सुख का पता लगाते थे। पर आज पूरी बात की काया - पलट हो गई है। आज के शासक प्रजा को दुःखी करके दिन - रात अपने सुख को सलामत रखने में व्यस्त हैं।

आज दुनिया की क्या स्थिति है? यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि आज की दुनिया बहुत पीछे रह गई है। दिनों दिन खराबियां और बुराईयां बढ़ रही हैं और आगे भी उनमें बढ़ौती ही होती रहेगी। कारण यह है कि मनुष्य में से दान, धर्म, दया, सचाई, ईमानदारी, एक - दूसरे के लिए प्रेम, कठिन समय में एक - दूसरे की सहायता करने के भाव आदि गुण गायब हो रहे हैं। सौ साल पहले जो जगत् की स्थिती थी वह आज कहाँ? वे गुण कहाँ हैं? वह आचरण और व्यवहार कहाँ है? फिर भी आज का मनुष्य कहता है कि दुनिया तरक्की कर रही है।

देखो! आज के शासकों के कर्म। जब भी दैविक आपदाएं आती हैं तो कुछ दयावान् लोग मुसीबत में फँसे लोगों के लिए दान करते हैं। पर वे शासक, उन दान किए पदार्थों से भी अनुचित लाभ उठाते हैं। हाल ही में हुए भूकम्प के पीड़ितों के लिए मिली हुई सहायता के माल, कंबल और

अन्य कितने वस्त्र मार्केट में बिक रहे थे। दान में मिली हुई राशि का कुछ हिस्सा बीच में से ही गायब हो रहा था। यह कैसा अनर्थ हो रहा है? जिन को इस बात का ज्ञान है वे भी खामोश मूक दर्शक बन कर सब देख रहे हैं।

दान का बड़ा महत्त्व है। इसका फल भी बड़ा और विशाल है। राजा भोज, एक धर्मात्मा और न्यायकारी राजा थे। विद्वान, संतों, महात्माओं का बहुत ज़्यादा सम्मान और कद्र करते थे। राज दरबार में विद्वानों को बिठा कर उनसे ज्ञान चर्चा किया करते थे। एक बार राजा भोज ने एक सवाल किया कि, ''किस कर्म के फलस्वरूप उन्हें इस जन्म में राजाई प्राप्त हुई है?'' राज दरबार के विद्वान और ज्ञानी गहरी सोच में पड़ गए। कर्म सिद्धांत के शास्त्र निचोड़ लिए पर इस बात का कोई हल नहीं ढूंढ पाए। कुछ दिनों के बाद एक बड़ी उम्र वाले विद्वान राजा की दरबार में आए। राजा ने उनसे भी वही प्रश्न किया, ''किस पुण्य के आधार पर उन्हें यह राजाई प्राप्त हुई है?'' वह विद्वान बड़ी कमाई वाले और अनुभवी थे। वे कुछ समय के लिए ध्यान की गहराई में खो गए। दो घड़ियों के बाद ध्यान अवस्था से जागृत होकर उस विद्वान ने राजा को उनके पिछले जन्म की कथा सुनाई।

पिछले जन्म में आप दो भाई और एक बहन एक स्थान पर रहते थे। उस नगरी में अकाल पड़ने के कारण कितने ही दिन आप भूखे रहे। एक दिन एक यात्री उस तरफ से जा रहा था। उसे आपकी हालत देखकर दया आ गई। अपने साथ यात्रा के लिए लाए भोजन में से उसने आप

तीनों को दो-दो रोटियां दी। हाथ-मुँह धोकर जैसे ही आप भोजन करने की तैयारी कर रहे थे कि एक भिक्षुक भूख के मारे आपसे खाने की मांग करने लगा। आपकी बहन, जो उस समय चौके पर झाड़ू मार रही थी, उसे इस भिक्षुक के बार-बार रोटी मांगने पर गुस्सा आ गया और उसने उस भिखारी के मुँह पर झाड़ू दे मारा। भिक्षुक पलट कर आपके भाई के पास आया। पर आपके भाई ने भी क्रोधित होकर उस भिक्षुक की धोती खींच कर उतार दी। अब वह भिक्षुक पलट कर आप की तरफ आया। आपके दिल में दया-भाव जागृत हुआ और आपने अपने हिस्से की दोनों रोटियां उस भिक्षुक को दान में दे दीं। भिक्षुक खा कर तृप्त हुआ और आपको दुआएं देते हुए गया कि, 'काश! तुम राजाई पाओ।' तो हे राजन! आपको यह राजाई उन दो रोटियों के बदले में मिली है। आपके भाई और बहन के दुष्कर्म भी व्यर्थ नहीं गए। आपकी बहन इस नगर की सेविका बन कर नगर में झाड़ू लगा रही है। आपका भाई नग्न मस्तान बन कर भटक रहा है। चाहो तो खुद ही देख कर संतुष्टि कर लो।''

दान दया का भाव है, भविष्य के लिए कमाई करना है। गृहस्थ, पारिवारिक जीवन में शास्त्र आज्ञा करते हैं कि अपनी कमाई का दसवां भाग अवश्य दान में खर्च करना चाहिए, ऐसा करने से कमाई में बरकत पड़ती है।

एक अनाज के व्यापारी के घर में नई बहू आई। मायके में इस कन्या को दान करने की आदत थी। पर यहाँ उसके ससुर पक्के कंजूस थे। अन्न का एक दाना भी उसे दान करने नहीं देते थे। एक दिन एक साधू दरवाजे पर

आया तो बहू ने अपने हिस्से का भोजन उठा कर साधू को दे दिया। ससुरजी बहुत क्रोधित हुए। इस पर साधू ने पूछा, ''सेठ जी, यह भोजन ताज़ा है या बासी?'' सेठजी गुस्से से बोले, ''तुमने ताज़ा भोजन खाया है।'' साधू नम्र भाव से बोले, ''सेठ जी यह भोजन बासी है क्योंकि यह सुख-संपत्ति तुम्हें पिछले जन्मों के पुण्यों के प्रभाव से मिली है। ये पुण्य इस जन्म में सिर्फ तुम खा रहे हो, इसलिए यह भोजन जूठा भी है। सेठ को साधू की यह बात दिल में चुभ गई। अगले दिन वे गोदाम से सड़ी और कीड़े लगी गेहूं की बोरी उठा लाए। बहू से बोले, ''इस गेहूँ का आटा पिसवा कर, तुम बेशक साधू-संतों को भोजन करवाओ।'' बहू मन ही मन में बोली, ''खराब गेहूँ ही सही, मन में दान का भाव तो जागृत हुआ।'' अगले दिन बहू ने इस आटे की रोटियां पका कर ससुर जी को भोजन में परोसी। जैसे ही उन्होंने एक ग्रास मुँह में डाला वैसे ही थू-थू करके फेंक दिया। चिल्ला कर बहू को डाँटने लगे। बहू ने विनम्र भाव से कहा, ''बाबा, आपको भविष्य के लिए तैयार कर रही हूँ, क्योंकि आप जैसा दान करेंगे, आगे चलकर भविष्य में आपको भी वैसा ही मिलेगा। साधू संतों को ऐसा खराब भोजन खिलाएंगे तो परलोक में भी वही मिलेगा।'' सेठजी की आँखे खुल गईं। बहू को हाथ जोड़ कर प्यार से बोले, ''बेटा, आज तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं। अब तुम्हें हर तरह की आज़ादी है, तुम्हें जो भी दान-पुण्य करना है, सो बेशक करो।''

हर धर्म का मूल उपदेश है दिल के अंदर दया धारण करना। मनुष्य जो मानवता के स्तर पर है, उसका हृदय

इतना नरम होता है कि किसी दूसरे का दुःख नहीं सह पाता है। ऐसा मनुष्य सदैव सहायता, हमदर्दी और मदद के लिए तैयार रहता है। यह वास्तव में मानवता के गुण हैं, जो हर मनुष्य में होने चाहिए। ''काश! सब की खैर हो।'' ऐसी कामना करने वाले मनुष्य के चोले में देवता हैं। यह जगत् एक विशाल परिवार है। सब इन्सान आपस में भाई-बहन हैं। धर्म, मज़हब अलग-अलग रास्ते हैं, पर बुनियादी नियम और सिद्धांत एक से ही हैं। स्वार्थी और खुदग़र्ज़ इन्सानों ने ही इस संसार में फूट डाली है। रचनाकार की यह शाही रचना, यह सारे लोग, एक ही परिवार के सदस्य हैं। एक ही नूर में से उपजी भिन्न-भिन्न ज्योतियां हैं।

एक फक़ीर गलियों में घूमकर भीख मांगने के लिए कह रहा था, ''है कोई दानी पुरुष जो मुझ तीन जन्मों के भिखारी को कुछ दे सके?'' उसकी यह बात सुन कर, एक गुरुमुख प्रेमी ने उसे बुलाकर पूछा, ''भाई, तुम्हें यह कैसे ज्ञात हुआ कि तुम तीन जन्मों से भिखारी हो?'' भिखारी ने उत्तर दिया, ''साहब! पिछले जन्म में मैंने अवश्य कुछ दान नहीं किया, इसलिए मैं समझता हूँ कि अवश्य खुद ही भिक्षुक रहा होऊंगा, इसलिए इस जन्म में भिखारी बना हूँ। आज भी मैं कुछ दान नहीं कर पाता हूँ, इस लिए अंदाज़ा लगा सकता हूँ कि अगले जन्म में भी अवश्य ही भिखारी बनूंगा।'' इस पर गुरुमुख ने उन्हें सलाह दी, ''बाबा, अब तुम कुछ कर सकते हो। जो भी तुम्हें भिक्षा में मिले, उसका बड़ा हिस्सा दान किया करो तो भविष्य के भिखारीपने से बच जाओगे।''

गीता में भगवान ने तीसरे अध्याय में कहा है, ''जो मनुष्य देवताओं द्वारा दिए गए पदार्थों को अकेला ही भोगता है, वह निश्चय ही चोर है'' इसीलिए परमात्मा ने यह नियम बनाया है कि, ''मिल-बाँट कर खाओ और सुख पाओ।'' सब का भला चाहने वाले का हृदय विशाल और उदार होता है। वह संतोषी, निस्वार्थ, दया, करुणा, हमदर्दी और नम्रता से भरपूर होता है। उसे सब के लिए एक-सा प्यार और स्नेह होता है। औरों के दुःख कष्ट, मुसीबतें, मुश्किलें अपनी करके समझता है तथा बैर, ईर्ष्या, झूठ-कपट से दूर रहता है।

ओ बंदे! याद रख कि गुलाब का फूल जिस हाथ से दूसरे को दोगे तो तुम्हारे उस हाथ में भी ज़रूर खुशबू आएगी। इसी प्रकार तुम अगर दूसरों का भला करोगे तो अवश्य तुम्हारा भी भला ही होगा। तुम्हारी एक भलाई की वजह से सैकड़ों फरिश्ते परलोक में तुम्हारी मदद करेंगे। जैसे कुदरत का नियम है कि एक बीज के दाने से सैकड़ों दानों से भरे संग या फल उपजते हैं, वैसे ही भलाई या बुराई भी एक प्रकार की खेती है, क्योंकि आने वाले जीवन में उसी का सौ गुना फल प्राप्त होना है।

हमारे भारत देश में आज भी बहुत सारा पदार्थ और संपदा मौजूद है। पर स्वार्थी प्रवृत्तियों के कारण एक के पास अनगिनत धन-दौलत इकट्ठी हो गई है जबकि उसके अन्य भाई भूख के मारे तड़प रहे हैं। आज भी मनुष्य इन अनादि दैविक नियमों पर चलकर मिल-बाँट कर, दूसरों की भलाई चाहे तो सुख समृद्धि दूर नहीं है।

काश! यह सुमति, समझ, ज्ञान और विवेक, बुद्धि सब में आ जाए!

छोड़ आश्रय सब का, ले राम की ओट, तो पापों भरे कोट, गिर जाऐंगे ज़मीन पर

एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल से सवाल किया कि, ''हिन्दुओं के भगवान स्वयं क्यों अवतार धारण कर पृथ्वी पर आते है? इतने सारे देवता उसके अधीन हैं, उनको भेज सकता है।'' बीरबल ने जवाब में कहा, ''जहाँपनाह, इस का उत्तर मैं कुछ दिनों बाद दूँगा।''

एक दिन जमुना नदी में सैर करने के लिए एक बड़ी नाव तैयार की गई, जिस में अकबर बादशाह अपने रक्षकों और अन्य कर्मचारियों के साथ और बीरबल के साथ सैर को जाने के लिए तैयार हुए। बीरबल ने हाथ जोड़ कर अर्ज़ किया, ''जहाँपनाह! रानी साहिबा ने कहा था कि उनके नवजात शिशु को भी सैर करवाने के लिए ले जाना।'' बादशाह की आज्ञा पाकर बीरबल महल में जाकर अपनी गोद में बालक को अच्छी तरह से लपेट कर ले आया। नाव जब बीच मंझधार में पहुँची तो चालाकी करके बीरबल ने हाथों से बच्चा उछालकर नदी में गिरा दिया। अकबर बादशाह तुरन्त चिल्ला कर नदी में कूदने वाले ही थे कि बीरबल ने उनका हाथ पकड़कर कहा, ''जहाँपनाह, गुस्ताखी माफ, यह बालक नहीं एक खिलौना था। आपके उस दिन के प्रश्न का जवाब देने के लिए ही मुझे यह नाटक करना

पड़ा। आपने प्रश्न किया था कि हिन्दुओं के भगवान क्यों स्वंय अवतार धारण कर पृथ्वी पर आते हैं? जबकि कितने सारे देवतागण उनके अधीन हैं, उन्हें भेज सकते हैं। आपके साथ भी आपके रक्षक और इतने सारे अन्य कर्मचारी हैं, स्वयं मैं भी हूँ, फिर भी बालक को बचाने के लिए आप स्वयं नदी में कूद रहे थे। इसी तरह परमात्मा भी अपने भक्तों के प्रेमवश स्वयं पृथ्वी पर पधारते हैं।

हर युग में जब-जब पृथ्वी पर भक्तों, साधूओं और सन्तों पर ज़ुल्म होते हैं, आम लोग उन्हें कष्ट देते हैं, उनकी रक्षा करने के लिए तथा शत्रुओं का विनाश करने के लिए परमात्मा साकार रूप धारण कर पृथ्वी पर पधारते हैं।

त्रेता युग में रावण और अन्य राक्षस ऋषियों, मुनियों को बहुत परेशान कर रहे थे। उनकी पूजा, यज्ञ, हवन में विघ्न डाल कर उन्हें तंग करते थे। ऐसी स्थिति में अपने भक्तों की रक्षा करने और बहुत सारे लोगों का उद्धार करने हेतु विष्णु भगवान, राम का अवतार लेकर पृथ्वी पर पधारे।

भगवान के अवतार धारण करने के कुछ और भी कारण थे। अपने भक्तों द्वारा उन्हीं को दिये गए श्राप, जो उन्होंने खुशी से स्वीकार किये।

एक बार विष्णु भगवान बैकुंठ से ब्रह्मपुरी आए। वहाँ ब्रह्मा, अन्य देवता और संत कुमार भी बैठे थे। सब ने उठ कर विष्णु भगवान को प्रणाम किया, मगर संत कुमार नहीं उठे, न ही उन्होंने प्रणाम किया। इसपर भगवान ने उसे श्राप दिया, ''तुम्हें निष्काम् होने का अहंकार है। तुम काम से दु:खी होकर स्वामी कार्तिक का जन्म लोगे।'' बदले में संत कुमार ने भगवान को श्राप दिया, ''आपको सर्वज्ञाता याने

सब कुछ जानने का अहंकार है, इसलिए आप भी कुछ समय अज्ञानी बन कर रहेंगे। ऋषि वशिष्ट आपको ज्ञान का उपदेश देंगे।''

किसी और समय पर भार्गव ऋषि अपनी स्त्री के खो जाने के कारण बहुत दु:खी और परेशान थे। भगवान ऋषि की यह हालत देखकर हँस पड़े थे। उस पर भार्गव ऋषि ने क्रोधित होकर उन्हें श्राप दिया था कि, ''किसी समय पर आप भी स्त्री के वियोग में रोएंगे।''

तीसरा श्राप जो उन्हें तब मिला था जब नरसिंह रूप धारण कर उन्होंने हरण्यकष्यप को मारा था। हरण्यकष्यप को मारते समय उनके हाथ और मुँह खून से भर गए थे। उन्हें साफ करने के लिए वे गंगा तट पर गए थे। उस समय ब्राह्मण देव श्रवण की स्त्री वहाँ नहा रही थी। विष्णु भगवान का यह भयंकर रूप देख कर वह इतनी डर गई कि मूर्छित हो कर गिर पड़ी और मर गई। ब्राह्मण ने उन्हे श्राप दिया कि, ''जिस तरह आपने मुझे अपनी स्त्री से अलग करके दु:ख दिया है, उसी तरह आप भी अपनी स्त्री के वियोग में दु:खी होएंगे।''

चौथा श्राप तब मिला जब नारदमुनि पर काम का नशा चढ़ा था। एक राजकुमारी के स्वयंवर में वरमाला पहनने के लिए भगवान से उन्होंने एक सुंदर रुप की मांग की थी। भगवान ने उन्हें बंदर का रूप दिया था। इस पर नारदजी ने भी उन्हें श्राप दिया था कि, ''स्त्री के लिए तुम्हें भी बंदरों की सहायता लेनी होगी।''

इस प्रकार, एक तरफ मिले हुए श्रापों को पूरा करने के लिए, दूसरी तरफ पृथ्वी पर बढ़े हुए पापों का बोझ

हल्का करने के लिए भगवान ने मनुष्य का रूप धारण करके अवतारी लीला की।

रामायण और महाभारत की गाथाएं हक़ीकत भरी हुई हैं। इन शास्त्रों में मानवता के आदर्श और मर्यादायें, फर्ज़, कर्तव्य, गुण और विशेषतांओं का वर्णन किया गया है। अनेकों युग बीतने के पश्चात्, मनुष्य में मानवता के गुण और शक्तियां कम हो गई हैं। यहाँ तक कि कितने सारे लोग इन्हें दंत कथाऐं, या मनगणित कहानियाँ समझते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि कुछ और सदियां बीतने के बाद मानवता का स्तर इतना नीचा हो जाए कि लोग इस युग के गौतम और नानक, शंकर और ज्ञानेश्वर, गोविंद सिंग और विवेकानंद की जीवनियों को भी दंत कथाऐं समझने लगें!

रामायण का आदर्श असली हक़ीकतें हैं। यह संसार एक महासागर है। इसका अंत कोई नहीं जानता। कर्मोंनुसार ही मनुष्य जन्म लेता है। इस पृथ्वी पर बहुत ही राजा, महाराजा जन्म ले चुके हैं, परन्तु आज उनका नामोनिशान तक नहीं है। पर जिन महापुरुषों ने राम - नाम का स्मरण करके शुभ कर्म किये, इन्सान ज़ात की भलाई में अपना जीवन व्यतीत किया, उनका नाम आज भी गाया जाता है। रामायण की कथा हर मनुष्य का मार्गदर्शन करती है कि, ''बुरे कर्मों से, झूठ - कपट, दग़ा, फरेब, बैर भाव से किनारा कर के अच्छे कर्मों और सचाई से अपने फर्ज़ का पालन करके मानव जन्म सफल करके यश और प्रसिद्धी प्राप्त करें।

पैदा होना भला उनका, जिनके सफल जीवन ने जाति और वंश का नाम रौशन किया हो'

सत्य वचन का पालन करने का अनोखा उदाहरण इस

ग्रंथ में मिलता है। जिस मनुष्य पर अनेक मुश्किलें हों, फिर भी वह अपने वचन पर अटल रहें, 'प्राण भले ही चले जाएं, मगर वचन झूठा नहीं पड़े।' कैकई से किए गए वायदे को पूरा करने के लिए राजा दशरथ ने अपने प्राण तक त्याग दिए पर वचन से नहीं हटे। जो सत्य से मुँह मोड़ता है, उसके मन से विश्वास निकल जाता है, और हर कोई उस झूठे को धिक्कार की दृष्टि से देखता है।

राजा दशरथ ने तीन विवाह संतान पाने की इच्छा से किए पर उन तीन स्त्रियों की वजह से घर में रंजिश पैदा हुई। एक कैकई के ज़िद और हठ की वजह से पूरा घर सुनसान-सा हो गया। अयोध्या की सारी प्रजा दुःखी हुई और कैकई की निंदा हुई।

इस आदर्श से यह निर्णय मिलता है कि घर में एक स्त्री होने से ही शांति कायम रह सकती है, और यह धर्म शास्त्रों का आदेश है।

कैकई की घोर निंदा होती रही, धिक्कार की अग्नि में चौदह वर्ष गुज़ारने के बाद, मर्यादा पुरुषोत्तम राम वन से लौटकर सबसे पहले कैकई के पास ही आए। उनसे प्रेम और स्नेह से मिलकर बोले, "माता! आपका मुझे वन में भेजने का मनोरथ, मेरे लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। मुझे इतने सारे ऋषि-मुनियों का दर्शन प्राप्त हुआ। उनकी सेवा करने हेतु मैंने कितने राक्षसों को मारकर उन्हें श्रापमुक्त किया। अंत में मैंने रावण का भी संहार किया।"

आदर्श यही है कि हर आई मुसीबत में भी अपना भला ही समझना चाहिए। हिम्मत और हौसले से डट कर उनका सामना करेंगे तो अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

और फिर भाइयों का प्रेम तो देखो! वनवास जाते समय भरत, शत्रुघन तो ननिहाल गए थे। राम के साथ सिर्फ लक्ष्मण थे। भाई राम को वनवास मिलते देख लक्ष्मण का हृदय टूट पड़ा। उसने हठ करके भाई के साथ बनवास में जाने की बात मनवाई, जैसे वह अपने बड़े भाई की सेवा कर सके।

स्त्री मर्यादा! विवाह के समय शास्त्रों अनुसार वेद मंत्रों में वर्णन किया हुआ है, कि स्त्री - पुरुष एक दूसरे के दुःख - सुख में, फर्ज़ पालन में, मुसीबत के समय एक साथ रहेंगे। इसी आदर्श को निभाने के लिए माता सीता ने भी ज़ोर भरा कि वह भी पति के साथ रहेंगी। पति पत्तों के वस्त्र पहन वन में निवास करे, ज़मीन पर सोए, फल - फूल खाए और स्त्री महल में रहकर राजाई वस्त्र पहने, सेज शैय्या पर सोए, छत्तीस प्रकार के भोजन खाएं, यह पतिव्रता स्त्री का आदर्श नहीं है। पतिव्रता तो वह स्त्री है जो पति का हर कठिन समय में साथ दे और पति की तन - मन से सेवा करे।

अब दूसरी ओर देखिए! घर की फूट! रावण का उदाहरण! पराई स्त्री को धोखे से ले आया। उसकी स्त्री मंदोदरी ने उसे इस बुराई के लिए बहुत समझाया। भाई विभीषण को तो उसने भली सलाह देने के कारण लात मारकर लंका से निकाल दिया। उसके भाई कुंभकरण ने भी कहा, ''अरे, किसी पराई नारी से बुरा व्यवहार किया है क्या? फिर तो तुम्हारी हार निश्चित है।'' ऐसे आदर्श इस अमूल्य और परम गाथा में ही मिलते हैं।

इसी तरह सुग्रीव से मित्रता धर्म, हनूमान से सेवा भक्ति, शबरी माता का गुरु के वचन में विश्वास कि, 'तुम्हें इस

जन्म में भगवान राम के अवतार में दर्शन मिलेगा।', पति के क्रोध के कारण पत्थर बनी अहिल्या का उद्धार, इत्यादि बहुत सारे आदर्शी उदाहरण इस ग्रंथ में मिलते हैं। आज सारा जग दु:खी है क्योंकि सब इन मूल आदर्शों को भुला कर माया की दलदल में फंस गये हैं।

यह ग्रंथ ऐसी मोह माया में फंसे इंसानों के उद्धार की राह दर्शाता है। भूले हुए लोगों को मोक्ष का मार्ग दिखाता है। प्रेम मोहब्बत रखने वालों को सही भक्ति मार्ग में लगाता है। ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम के अवतार धारण करने का दिन चैत्र महीने के शुक्लपक्ष की नवमी है।

तुलसी जगत में आ कर, पूरे करो दो काम,
नित नेम से करो भजन, एवं दूजा कर्म निष्काम!
जीवन होगा सफल तुम्हारा, पाओ पद निर्वाण!!

॥ गायत्री मंत्र ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

तूने हमें उत्पन्न किया, पालन कर रहा है तू,
तुझसे ही पाते प्राण हम, दु:खियों के कष्ट हरता तू।
तेरा महान तेज है, फैसा हुआ सभी स्थान,
सृष्टि की वस्तु वस्तु में, तू हो रहा है विद्यामान।
तेरा ही धरते ध्यान हम, मांगते तेरी दया,
ईश्वर हमारी बुद्धि को, श्रेष्ठ मार्ग पर चला॥

पृथ्वी पापों के बोझ तले दब रही है!

उड़ीसा का तूफ़ान हो या गुजरात का भूकम्प, बाढ़ हो या अग्निकाण्ड, दोष देते हैं कुदरत को! जिम्मेदारी मालिक के ऊपर! लेखक, शायर और विद्वान अपनी रचनाओं में दर्द भरेंगे। मालिक को टोकेंगे। कुछ लोग इसे ईश्वर का अन्याय मानेंगे। इस तरह से अपने दिल का दर्द, अफसोस प्रकट करके दिल का भार हलका करेंगे, दर्दमंदों को दिलदारी देंगे और प्रकृति के विरुद्ध शिकायत व्यक्त करेंगे।

हक़ीकत की निगाह से देखेंगे तो हमारे यह शोक, शिकवे व शिकायतें बेकार और व्यर्थ हैं। सचाई से कोसों दूर हैं, वह सचाई जिसे हम कबूल करने के लिए तैयार नहीं हैं, वह हक़ीकत जिसे मानने से हम दूर भाग रहे हैं।

अनादि काल से ईश्वर और उन की प्रकृति अपने नियमों और मर्यादा के अंदर कार्य कर रहे हैं। सूर्य, चंद्र का उदय, दिन-रात का निर्माण, पूरे समय पर ऋतुओं का कार्य इत्यादि सब अपने-अपने बनाए नियमों के अंदर फर्ज़ अदा कर रहे हैं।

मानव सृष्टि की व्यवस्था में जो भागीदार हैं, वे सियासतदान, कर्मचारी व आम जनता, जिनका अपना नियुक्त कार्य आदि-जुगादि से बांटा हुआ है वे आज आचरण, व्यवहार और क्रिया में बहुत नीचे गिर गए हैं। आईये थोड़ा विचार करके देखें। पृथ्वी पर अनेक देश हैं जिनका कार्य सियासतदान चलाते हैं, जिनकी गिनती लाखों में है। पाठकजन गहराई से सोचकर बताएंगे तो कितने सियासतदान सचाई, ईमानदारी,

वफादारी व देशभक्ति की भावना से काम करते होंगे? लोभ, लालच में फंसे सियासतदान अनेक गुनाहों और षड़यंत्रों में फंसे होने के बावजूद, हर तरह से अपने को सही साबित करने में व्यस्त हैं। आम जनता को धोखे से लुभाकर, उनके वोटों को पाकर, पदवी पर चुनकर आने के बाद उन्हीं का खून चूस कर, उन्हे खोखला करके, अपने पेट फुलाकर दुनिया भर के ऐश भोग रहे हैं। अरे भाई, इस सचाई को क्यों नहीं कबूल करते? क्यों बेकार में ऐसे सियासतदानों की बढ़ाई करके, उनकी प्रशंसा और सराहना के बयान लिख रहे हो? भ्रष्टाचार, व्यभिचार, बलात्कार और हत्या के मुकदमें में फंसे, आज देश पर राज कर रहे हैं। जनता की आवाज़ दब गई है। हर देश विनाशकारी यंत्र, हथियार और उपकरण इकट्ठे करने की ज़िद में अड़ा हुआ है। सियासतदानों की यह ज़िद और होशियारी एक दिन सारे विश्व के विनाश का कारण बनेंगी! आखिर इस पाप का फल सब को भोगना ही पड़ेगा। 'पृथ्वी पाप के बोझ तले दब रही है!'

आओ तो निरीक्षण करें कर्मचारियों का! सारे विश्व में करोड़ों में तो अवश्य होंगे! सिद्धांत कहता है कि जो व्यक्ति नौकरी करे वह सचाई, ईमानदारी, मेहनत और नम्रता से काम करके मालिक को संतुष्ट रखे। समय का पाबंद हो, फर्ज़ पर पूरा हो, परिश्रम करे और मालिक का नुकसान न करे, मालिक से वफादार रहे। पाठकगण दिल पर हाथ रख कर बताएं कि आज ऐसे कितने कर्मचारी होंगे जो ऊपर बताए नियमों अनुसार काम करते होंगे? कितना प्रतिशत होगा ऐसे कर्मचारियों का? बड़ा हिस्सा कामचोरों का मिलेगा। काम कम तनख्वाह ज़्यादा! रिश्वतखोरी से बचा तो शायद ही

कोई कर्मचारी मिलेगा। सरकार के हर क्षेत्र में रिश्वत का बोलबाला है। ना सिर्फ पुरुषों में बल्कि आज की स्त्री कर्मचारियों में भी यह बुराई फैल चुकी है। जज, वकील, डाक्टर, बड़ी-बड़ी पदवी वालों में भी रिश्वत का कैंसर अपनी जड़ें मजबूत कर चुका है! इसका इलाज सियासतदानों के पास भी नहीं है। इसीलिए प्रकृति को ही समय-समय पर उनका इलाज करना पड़ता है।

रेल्वे में सरकार ने तत्काल 'रिर्जवेशन' की व्यवस्था की है। उस दिन एक सज्जन ने बताया, ''माँ की बीमारी की वजह से कलकत्ते से आने के लिए तत्काल टिकट के लिए तीन सौ रुपए दलाल को रिश्वत दी, तब जाकर टिकट मिली।'' वकील ने कहा, ''जज मेरी जेब में है। पैसे खर्च करोगे तो फैसला जो तुम चाहोगे वह होगा।'' डाक्टर धनी लोगों का इलाज तो ध्यान लगाकर करते हैं, मगर ग़रीबों का जैसा-तैसा करते हैं। चाहे मुर्दा नरक जाए या स्वर्ग! झूठ कपट का बाज़ार गर्म है। दोषी ऐश कर रहे हैं और बेगुनाह जेल में पड़े हुए हैं। जिनकी सियासत में जान-पहचान है ऐसे कैदी जेल में भी ऐश कर रहे हैं। आम गुनाहगारों को जेल में पूरा खाना तक नहीं दिया जाता है।

आज भारतवासियों का विवेक इतना कमज़ोर हो चुका है कि वे आवाज़ भी नहीं उठा सकते। जो आवाज़ उठाते हैं, उनको धन देकर, हमेशा के लिए खामोश कर दिया जाता है। पत्रकार हो या समाज सेवक! एक दिन शिकायतें करेंगे, अगले रोज़ उन्हीं की प्रशंसा करेंगे। कहेंगे, ''कल गलत रिपोर्ट के आधार पर यह विषय गलत छप गया था!'' अरे, इतने सारे गुनाह हो रहे हैं! उनका परिणाम कौन

भोगेगा? 'पृथ्वी पापों के बोझ तले दबी जा रही है!'

अब आम जनता पर थोड़ा सा ग़ौर करें! एक तरफ है व्यापारी वर्ग। दूसरी तरफ हैं मध्यम वर्ग और गरीब वर्ग के मज़दूर, जो 'जब पाएं तब खाएं' पर आधार रखते हैं। आज राम और कृष्ण के देश में, गौतम और गुरुनानक के देश में, शंकराचार्य व विवेकानंद के देश में हो रही है खाने के चीज़ों में मिलावट, दवाओं में मिलावट, नकली माल असली नाम पर बिक रहा है। माप-तौल में ठगी, विश्वासघात्, बेईमानी इत्यादि! सरकार के पास ये फरियादें मौजूद हैं!! मसालों में जानवरों की लीढ़ मिली हुई, लाल मिर्चों में ईंटों का पावडर, चावल और गेहूँ में पत्थरी और न जाने क्या-क्या मिलाते हैं। आज का व्यापारी, गुनाहों का कारखाना बन गया है। बहुत साल पहले कलकत्ता में ढमढम इलाइके में सरसों के तेल में मोबाईल तेल (आज से ४० साल पहले जब यह सरसों के तेल से सस्ता हुआ करता था।) मिलाकर बेचा गया। जिस की वजह से करीब चार सौ गांववासी लकवे की बीमारी से ग्रस्त हो गए। वह व्यापारी पकड़ा गया, पर पैसे खिलाकर छूट गया। दवाओं में मिलावट के कारण ठीक होने के बजाय सदा के लिए मरीज़ बन जाते हैं। कुछ तो मर भी जाते हैं। क्या सरकार कुछ नहीं कर सकती? पर जो खुद गुनाहों में फंसे हों वे कैसे और गुनाहगारों को पकड़ेंगे? शायद ही कोई पेशा सच और ईमान पर चलता हो, बाकी तो बस ऐसे ही हैं। आज खाने-पीने की चीज़ों में इतनी मिलावट है कि शुद्ध वस्तु ढूंढने से भी नहीं मिलती। एक मित्र ने आँखो देखी बात बताई। एक व्यापारी के बड़े शाही गोदाम में चार

पाँच काँक्रीट मिक्सर पड़े थे। दरवाज़ों की दरारों से उसने देखा कि कैसे शुद्ध माल में मिलावट करके बोरियां भर कर सिलाई करवा रहा है। काली मिर्च में पपीते के बीज और घास - फूस, रेती इत्यादि तरह तरह के मसालों में मिलाकर रंगीन डिब्बों में पैक करवाकर, बड़े दामों पर बेचा जा रहा है। आज वह व्यापारी करोड़पति है। बड़े सियासतदानों से उसकी मित्रता है। आम लोगों में धर्मों के भेद - भाव, स्वार्थ, अंधविश्वास, नफरत, धिक्कार, बैर, विरोध जैसी घातक बुराईयां दिनोंदिन बढ़ रही हैं। शराबखोरी, मांसखोरी, जुआ, वैश्या - वृत्ति जैसे घातक गुनाह आजकल के मनोरंजन और मौजों में गिने जा रहे है। स्त्रियों में पतिव्रत धर्म बहुत - बहुत कम हो गया है। शारीरिक ऐश में लुप्त स्त्रियां आज उन्हें वक्त की जरूरत बताती हैं। बड़े - बड़े खानदानों की स्त्रियां, सारी - सारी रात ''नाईट क्लबों'' में और होटलों में बिता कर अपने आप को ऊंचे दर्जे का मानती हैं। धन के पीछे अमीर हो चाहे गरीब, पागलों जैसे दिन - रात दौड़ रहे हैं। कुकर्म, पाप, घोर गुनाह करके भी धन इकट्ठा करने की होड़ लगी है। ऐसे पापों का परिणाम कौन भुगतेगा? 'पृथ्वी पापों के बोझ तले दबी जा रही है।'

आखिर में देखो धर्म के ठेकेदारों और प्रचारकों की तरफ! आज धर्म में धोखा और दंभ उन्नती कर रहा है। हाल ही में किसी सज्जन ने बताया कि एक महात्मा ने पाँच दिनों का कार्यक्रम रखा। उसके सेक्रेटरी ने कहा, ''हमारे गुरू तो कुछ लेते नहीं। पर अस्पताल बना रहे हैं, उसके लिए धन की ज़रूरत है। सिर्फ इस कार्य के लिए एक दिन के कार्यक्रम का एक लाख रुपये तय किया है। पाँच

दिनों के पाँच लाख रुपये और बहुत सारी सौगातों से बैग भरकर ले गए। प्रचार करते कहते थे, 'सर्वे भवन्तु सुखिन: .....।' एक लेखक ने उस महात्मा की बहुत प्रशंसा लिखी। आज सच्ची पहचान तक नहीं है। कहा जाता है कि हर चमकती चीज़ सोना नहीं होती। इसलिए आज समय ऐसा है कि हर बात की गहराई से जानकारी प्राप्त करने के बाद ही कुछ कहना चाहिए। बहुत लोग कहते हैं, 'हमारा क्या जाता है?' न जानते हुए वे भी पाप के हिस्सेदार बन जाते हैं। सच को जानने वाले के लिए मुँह खोलना ज़रूरी हो जाता है। बाकी बाहरी सुन्दरता, नज़ाकत और शान देखकर खुशामद करने वाला अपने आप को भी पाप का भागी बनाता है। हर मनुष्य जन्म लेने से ही परिवार, समाज और देश का सदस्य बन जाता है। सच्चा इन्सान वही है जो सारी उम्र सत्य के लिए संघर्ष करता रहे। आज भारत देश में कितने आश्रम, मंदिर सिर्फ दिखावे के लिए हैं। पर हक़ीकत में वे गुनाहों के अड्डे हैं। 'इन्हीं पापों के बोझे तले पृथ्वी दबी जा रही है।'

उस दाता की तरफ जो फरियाद की ऊंगली उठाएगा, वह भी पाप का भागी होगा! उस शानदार शरणागति वत्सल की जो शिकायत करेगा, वह अपने ऊपर गुनाहों का बोझ बढ़ाएगा। ईश्वर दयालु है और न्यायकारी भी! जो भी उनकी शरण लेते हैं, प्रायश्चित करते हैं, पापी जीवन का त्याग करते हैं, उन पर ईश्वर दया करते हैं। गुनाहगारों को सज़ा देते हैं, ताकि उनका भविष्य सुधरे और उनके गुनाहों की कालिख मिट जाए। इस ब्रह्मांड को चलाने के लिए ईश्वर ने पाँच तत्वों के रूप में प्रकृति की रचना की। जल, वायु,

अग्नि, पृथ्वी और आकाश। इन्ही तत्वों से यह स्थूल शरीर बना है। ब्रह्मांड को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए, उसी ईश्वर की तरफ से निश्चित मर्यादाओं, नियमों और सिद्धांतों के अंदर यह तत्व कार्य कर रहे हैं। पर मनुष्य परमात्मा से मिली हुई बुद्धि रूपी शक्ति का दुरुपयोग कर रहा है। मर्यादाओं और निश्चित सिद्धांतों के विरुद्ध कार्य कर के स्वार्थ के अंध में पापों का बोझ बढ़ा रहा है। पाप करने वालों, देखने और सुनने वालों को सज़ा देने के लिए समय - समय पर प्राकृतिक प्रकोप होते हैं। जैसे - जैसे पाप बढ़ेगा, वैसे वैसे प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि होती रहेगी।

प्रकृति का न्याय अटल है!

महात्मा शहर में अपना कार्यक्रम समाप्त करके साथियों सहित स्टेशन पर आए। रात के ग्यारह बज चुके थे। रेल के सब डिब्बे लोगों से खचाखच भरे हुए थे। बैठने की तो क्या, खड़े रहने की भी जगह नहीं थी। जैसे - तैसे करके वे सब एक डिब्बे में घुस गए और एक कोने में खड़े रहे। ट्रेन चलने लगी, धीरे - धीरे रफ्तार भी बढ़ने लगी। महात्मा ने चारों ओर देखा कि बैठे हुए, खड़े हुए, नीचे - ऊपर सब नींद के खुमार में थे। कोई फर्श पर, कोई एक - दूसरे के कंधे पर सिर रखकर झपकियां खा रहे थे। महात्मा दिल में सोचने लगे, 'गाड़ी में सब यात्री तो इस प्रकार की निद्रा में हैं, किसी को भी अपने तन - बदन की सुधि

नहीं है। फिर भी ट्रेन चल रही है, अपनी रफ्तार से। कैसे? कौन चला रहा है? यह सोए हुए, अर्ध निद्रा में मस्त लोग तो गाड़ी चलाने की स्थिति में भी नहीं हैं। फिर..... अरे हाँ! एक व्यक्ति है जो जागृत है। वह गाड़ी का चालक, सचेत और जागृत, वही निद्रा में मस्त यात्रियों की सलामती के लिए बहुत सावधानी से गाड़ी चला रहा है।

महात्मा ने सोचा, 'इस जगत की भी यही स्थिति है। ज्यादातर हर मनुष्य मोह, माया, विषय और विकारों की नींद में बेखबर सो रहे हैं। इनको न मनुष्य जीवन के लक्ष्य या मकसद का पता है, ना ही अपनी सुख-सलामती की चिन्ता! वे सजग, मोह-माया से मुक्त महापुरुष ही हैं जो इस सारे जगत् रूपी गाड़ी को चला रहे हैं।

इस कथन में कितना न सत्य है!

कुछ समय पहले 'हिंदवासी' पत्रिका में 'पृथ्वी पापों के बोझ तले दबी जा रही है' लेख छपा था, तो कई पाठकों ने फोन द्वारा या पत्र लिखकर उस लेख की खूब प्रशंसा की। एक पाठक ने फोन पर कहा, ''यह नंगा सच आज पढ़ने के लिए मिला। सही में यही कारण है कि पृथ्वी पर इतनी सारी आपदाएं आ रही हैं।''

इस जगत् में सारा साम्राज्य प्रकृति का ही है। कायदे, कानून, रीति, रस्में भी उसी की चलती हैं। उलटा या विरुद्ध दिशा में चलने वाले को योग्य सज़ा वह देती है। सुख इनाम है और दुःख सज़ा! क्या हम यह बात मानने के लिए तैयार है? समझ, जानकारी, ज्ञान और बुद्धि की विशालता सिर्फ मानव देह में ही मिलती है। फिर उनका सही या

गलत उपयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता भी हमें दी गई है। इन योग्यताओं का उपयोग करते समय स्वार्थ या परमार्थ की समझ भी हमें प्रदान की गई है। फिर भी हम दोष देते हैं दातार को! जिम्मेदारी प्रभु की! यह है हमारी अक्ल का इन्साफ! हमें यह याद रखना चाहिए कि सुख में चाहे दु:ख में प्रकृति की तरफ से कुछ पाबंदियां नियमित की गई हैं, जिनके दायरे में हमें दु:ख सहने हैं और सुख भोगने हैं। सुख भोगते समय, नाजायज़ और गैरक़ानूनी तरीके अपनाने से, सुख का ज्यादा आनंद लेने के लिए, जैसा आचरण करेंगे, उसी प्रकार की सज़ा के पात्र भी बनेंगे। हम होशियारी, चालाकी और चतुराई से कितने भी बचने के उपाय करें, मगर प्रकृति हर कार्य, बात और अवस्था का पूरा-पूरा न्याय करेगी।

मनुष्य चाहे बीते हुए और भविष्य के जन्मों के चक्कर को ना माने, पर फिर भी यह प्रकृति का नियम अटल है। हर मनुष्य अपने कर्म और संस्कार लेकर आगे की यात्रा करता है। हर जन्म पूर्व संस्कारों और कर्मों का ही परिणाम है। आईए, ज़रा ग़ौर करें प्रकृति की आपदाओं पर! उदाहरणार्थ भूकंप! ठीक भूकंप के समय से पहले हज़ारों लोग वहाँ से किसी कारणवश चले जाते हैं। और वैसे ही कई लोग अलग जगहों से वहाँ पर पहुँच जाते है। और फिर उस जगह पर रहने वाले हर व्यक्ति को भी एक सी हानि नहीं पहुँचती। कुछ मर जाते हैं, कुछ जख्मी हो जाते हैं, कुछ अपने अंग खो देते हैं और कुछ को तो सिर्फ अपनी संपत्ति से हाथ धोना पड़ता है। क्या यह कर्मों के अनुसार नहीं है, कि कितने ही लोग इस विपदा में से

भी सही सलामत बच निकलते हैं? महाभारत में एक सुंदर सा उदाहरण है। वशिष्ट मुनि के आश्रम से कामधेनू गाय को चुराने का काम ऋषि विश्वामित्र ने वसू देवताओं को सौंपा। पहले तो वसू (ये आपस में आठ देवता गण हैं) घबरा गए। सोचने लगे कि अगर आज्ञा का पालन नहीं करेंगे तो श्रापग्रस्त हो जाएंगे और अगर यह काम करते हैं तो सज़ायाब होएंगे। श्रापग्रस्त होने से उन्होंने सज़ा पाना बेहतर समझा। अब गाय की चोरी तो एक ही करेगा, बाकी अन्य तो सिर्फ उस काम में सहकार देंगे। इस चोरी के कर्म करने से उन्हें सज़ा के रूप में यह श्राप मिला कि जाकर मृत्यु लोक में जन्म लो। क्षमा मांगने पर जिन्होंने सिर्फ साथ दिया था उन का जन्म लेते ही उद्धार हो गया। बाकी जिसने गाय की चोरी की थी, उसे भीष्म पितामह के चोले में, सारी उम्र इस मृत्युलोक में रहना पड़ा।

और फिर कौरवों के खानदान में एक विदुर ही थे जिन्होंने बार-बार अयोग्य और अधर्म के कर्मों के विरुद्ध में अपनी आवाज़ उठाई। बार-बार अपना अपमान सहते रहे, पर कपट और चालबाज़ी का विरोध करते रहे। युद्ध शुरू होने से पहले ही देश छोड़कर चले गए। बोले, ''यह अधर्म की लड़ाई है।''

इन उदाहरणों के आधार पर आज के शासक जो पापयुक्त और अयोग्य कर्म करते हैं, उन में कितने अफसर और कर्मचारी होंगे! क्या वे प्रकृति के न्याय से बच पाएंगे? गीता में भगवान ने स्वयं अपने मुखार्विंद से कहा है, ''हे बंदे! तुम्हें कर्म करने का पूरा अधिकार और स्वतंत्रता है। पर याद रखना, उस का परिणाम और फल मेरे हाथ में

है। इसलिए कोई भी क्रिया मन, वचन या कर्म से सोच समझ कर, परिणाम का विचार करने के पश्चात् ही कर!''

हमारे वेद शास्त्र और सारे धर्म ग्रंथ मानवता का उपदेश करते हैं। मानव जन्म लेकर किस प्रकार मनुष्य को ऐसा आचरण, विचार और व्यवहार करना चाहिए जिससे आगे चलकर उसे दु:ख, पीड़ा, बीमारियां और कष्ट न भोगने पड़े।

आज आमतौर पर मुनष्य का झुकाव पुस्तकी और जड़वादी ज्ञान पर है। वेद शास्त्रों की शिक्षा पर अमल नहीं किया जाता। जो भी कर्म करते हैं, वह सिर्फ इस नश्वर शरीर का सुख भोगने के लिए। जब कोई मनुष्य बड़ी पदवी भोगने के बाद अपने काम से मुक्त हो जाता है, तो भी वह यही चाहता है, कि लोग उसे उसकी भूतपूर्व पदवीधारक के रूप में ही जाने और इस बात पर गर्व भी करता है। पर जब हमारे वेद शास्त्र, अनुभवी ऋषि मुनि, महात्मा हमें बताते हैं कि ''तुम आत्मा हो!'' तो भी हम विश्वास नहीं करते। मनुष्य जीवन का इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है? सत्गुरु नानक देव से एक बार मर्दाने ने पूछा, ''सच क्या है और झूठ क्या है?'' गुरू साहिब ने जवाब में मर्दाने से कहा, ''मर्दाना, जिसे यह मनुष्य सत्य मानता है, वही दरअसल झूठ है। जन्म से लेकर जीव हर बात को सत्य समझता है। कहाँ जाता है उसका बचपन, उसकी जवानी? कहाँ जाती हैं इस संसार और परिवार की मौज मस्तियां? सब एक-एक कर के चलते बनते हैं। अब जो कायम ही नहीं है, वह सत्य कैसे हो सकता है? पर मर्दाना, यह मौत ही एक ऐसा सत्य है, जो इस झूठ को प्रमाणित करता है। उस वक्त हमारी आँखे खुलती हैं। मन

के भीतर यह विश्वास जागता है कि यह जगत् एक मिथ्या है क्योंकि मरे हुए व्यक्ति के लिए तो जैसे जगत् ही मर जाता है। वह जीव जब यह शरीर और जगत् का त्याग करता है तब ही उसे इस जगत् के मिथ्या होने का और आत्मा की सत्यता का अहसास होता है! इसलिए मर्दाना, मौत ही सत्य है।''

देखो, आज का मनुष्य इस सत्य को छोड़कर कैसे झूठ के पीछे दौड़ रहा है! दौड़ते-दौड़ते हाँफने लगता है। ज्योत की झलक और सच का तेज देखने के लिए कुछ ही लोग तैयार हैं। अन्य सब लोग जड़वाद के अंधेरे में हाथ-पांव मार रहे हैं। आज के वैज्ञानिक दावा करते हैं कि आज के मनुष्य की उम्र बढ़ रही है। सुख भोगने के साधनों में भी वृद्धि हुई है क्योंकि शरीर की आयु बढ़ाने के अयोग्य साधन व्यवहार में लाए जाते हैं। (हालांकि आयु बढ़ने का सही कारण यह है कि आज से करीब पचास साल पहले युद्ध, दंगा, फसाद और आमहत्याएं हो रही थीं, जिसमें अधिकतर जवान लोग मृत्यु का शिकार होते थे। छोटी-बड़ी बीमारियों का भी इलाज नहीं होता था। लेकिन आज के देशों में यह जागृति आई है। लड़ाईयां, फसाद व कोस काफी कम होते जा रहे हैं। माता, टी.बी. और 'कालरा' जैसी बीमारियों का भी इलाज खोजा गया है। यह ही मुख्य कारण हैं कि साधारण इन्सान की आयु बढ़ रही है।) लेकिन ऐसी बढ़ी हुई आयु का क्या लाभ जबकि मनुष्य दीर्घ आयु में ही बीमारियों में फंस जाता है। दिनोंदिन मीठे पेशाब, खून के दबाव, कैंसर, जोड़ों के दर्द, एडस् आदि बीमारियां बढ़ती जा रही हैं। पूरी तरह से तंदरुस्त, बिना किसी रोग में

फंसे मुश्किल से दस या पंद्रह प्रतिशत लोग होंगे। पहले युगों में लोग अधिकतर तंदरुस्त, स्वस्थ और शक्तिशाली हुआ करते थे। यहाँ तक कि मनुष्य अपनी इच्छा से शरीर त्यागते थे, क्योंकि कि वे सब वैदिक नियमों पर चलकर सत्य और धर्म का पालन किया करते थे। शास्त्र बताते हैं कि जो सत्य धर्म का पालन करता है, उसकी सत्य और धर्म भी रक्षा करता हैं। हर एक महापुरुष सत्य और धर्म पर चलने का उपदेश करता है। कलयुग के आरंभ में गौतम बुद्ध के रूप में ईश्वर ने अवतार लिया। गौतम बुद्ध का भी उपदेश यही था कि, ''ईश्वर की तलाश छोड़ दो। पर अपना जीवन सत्य की राह पर चलाओ। सत्य पर चलने के आठ साधन गौतम ने बताए। उन्होंने कहा कि कलयुग में सत्य ही ईश्वर है। जिसका जीवन सत्य पर आधारित है, उसी ने जैसे ईश्वर को पहचाना और पाया है।''

आज सियासतदानों, नेताओं और कर्मचारियों में समाज का बड़ा हिस्सा गुनाहों और गलत कार्यों में फंसा हुआ है। आम जनता यह जानते हुए भी कि यह पाप कर्म है, खामोश है। क्या वे उस पाप के भागीदार नहीं बनेंगे? समाज में कितनी बुराईयां विकसित हो रही हैं! बलात्कार, आतंकवाद, हत्या, डकैती, चोरियां और धोखेबाज़ी की घटनाएं आज चारों ओर व्यापक हैं। क्या सरकार कुछ नहीं कर सकती? स्वयं गुनाहों में फंसे सियासतदान और नेता क्या करेंगे? कहा जाता है कि 'चोर का भागीदार भी चोर।' राष्ट्रीय प्रेम भावना आज कहाँ है? दया, धर्म का मूल आज क़हाँ है? पतिव्रत धर्म आज रहा नहीं! सगे संबंधियों में प्रेम नहीं रहा है। फिर भी सयाने और भोलापन जताने वाले कहते है ''प्रकृति

ऐसे न्याय करती है कि 'सूखों के साथ गीले भी झेलें!' हाँ ऐसे न्याय होता है कि अगर गीले सूखों का साथ देंगे, उनके साथी बन जाऐंगे तो प्रकृति उन्हें भी नहीं छोड़ेगी। जैसे ज़हर तो हर हाल में ज़हर है, एक बूंद हो या एक बोतल, वैसे गुनाह भी गुनाह ही है, हलका हो या भारी! हाँ उसकी सज़ा भी उसी प्रकार की हलकी या भारी ही मिलेगी। प्रकृति का न्याय अटल है।

अरे रुको! आगे मत बढ़ो!! थोड़ा पीछे देखो!!!

हम अपने वतन से बिछड़ गए! अपने पूर्वजों के घर छोड़कर, बेघर होकर बयावानों और मैदानों में भटके! एक रात ही में अपना देश पराया हो गया। वर्षों से मिली पारिवारिक जायदाद, ज़मीन, मकान इत्यादि सब ऐसे ही छोड़-छाड़ कर, खाली हाथों निकल पड़े। उस वक्त की पीढ़ी को, जो कोई आज भी जिंदा हैं, कैसे भूल पाएंगे अपनी जन्मभूमि को? उसकी याद को?

याद है उस वक्त की पारिवारिक और समाजिक अवस्था। सादगी, सचाई, प्रेम, प्यार, शर्म-हया थी सब में। परिवारों में स्नेह था, छोटे बड़ों के लिए मर्यादा, इज़्ज़त थी! सामूहिक परिवार में दस-बीस सदस्य खुशहाल और प्रेम शांति से रहते थे। सिर्फ पचास, सौ रुपयों में घर का महीने का खर्च चलता था। तीन रुपया मन (चालीस सेर) गेहूं, चावल,

दाल इत्यादि। एक रुपये में मक्खन को पिघलाकर, अपनी आँखों के सामने एक किलो असली घी निकालते थे। बारह रुपयों में सोने की एक गिनी (सिक्का) मिलती थी। वह आखिरी पीढ़ी, जिन्होंने यह सारे सुख अपने वतन में देखे, वे कैसे भूलेंगे उन सुनहरी यादों को? शायद ही किसी घर में टेलिफोन या रेडियो होता था। घर से कोई सदस्य यात्रा पर जाता था तो उसकी सलामती से पहुँचने के समाचार के लिए भी कितने सारे दिन सब्र से इंतज़ार करना पड़ता था। घरों में आटा पिसने के लिए चक्की हुआ करती थी, जहाँ सुबह-सबेरे उठकर घर की माताएं और बड़ी बेटियां भगवान के नाम का भी उचारण किया करती थी और चक्की भी पीसती रहती थीं। बुज़ुर्गों को भगवान का रूप मानकर, घर के पुत्र, बहुऐं और पोते सेवा किया करते थे। मजाल है कि घर के किसी बुज़ुर्ग से बेअदबी करें या उनकी रज़ामंदी बिना कोई काम करें! अरे भाई, यह किस युग की बातें कर रहे हो?

क्या कोई किताब लिख रहे हो?

कौन करेगा इन बातों पर विश्वास? यह सब तो बीते हुए कल की बातें हैं। अर्ध शताब्दी में देखते-देखते कितना बदलाव आ गया है। सच, सच नहीं लगता-आज की पीढ़ी इन बातों को ख्वाब की बातें समझते हैं! मुँह के लड्डू समझते हैं। ज़माना और उस के लोग खुश हो रहे हैं कि दुनिया प्रगति कर रही है। भौतिक पदार्थ, शरीर और इंद्रियों की तृप्ति के साधन दिनों-दिन बढ़ रहे हैं। इस नई रोशनी के नौजवान जिसे तेज़ रफ्तार वाली प्रगति कह रहे हैं, उसने दरअसल सारे संसार में अशांति और असंतोष पैदा

किया है। मानसिक जीवन में यह तबाही का कारण बनते जा रहे हैं। ज़रा सोचकर तो देखिये कि पचास-सौ साल पहले जो जीवन में रस था, आनंद था, शांति थी, इस जड़वाद की प्रगति में गायब हो रहे हैं।

पहले धंधे व्यापार में सच था, संतोष था, बरकत भी थी। घर का एक सदस्य कमाता था तो दस-पंद्रह सदस्यों का कुटुंब खुशहाली से पलता था। आज घर के सभी सदस्य नौकरी, धंधे या पेशे द्वारा कमा रहे हैं फिर भी सदा घर में कमी ही कमी रहती है। 'टिप टॉप', झूठी शान और फैशन-परस्ती ने पारिवारिक जीवन को झंझोड़ कर रख दिया है। सादगी और स्वच्छता ही इन्सान का सच्चा श्रृंगार और खूबसूरती है। पहले बनाई इमारतें, मंदिर इत्यादि तो देखो! कितने न मज़बूत, शान से गर्दन ऊंची कर खड़े हैं। बिल्कुल हैरान करने जैसी हैं क्योंकि उन में सचाई और सदाकत वाले परिश्रम का पसीना मिला हुआ है। परिश्रम और प्रेम की नींव पर खड़े हैं यह स्थान! रोशन, हवादार, मज़बूत ऐसे स्थान जहाँ सेहत और स्वास्थ्य भी सदा अच्छे रहते थे।

अरे, थोड़ा सा तो पीछे देखो! हम कितने सुखी थे! थोड़े में ही संतुष्ट थे। ज़माना इतना आसान, रुचिकर, सुखी और रस भरा था कि अनाज के भिन्न-भिन्न प्रकार खाने से ही रोज़ की ज़रूरते पूरी हो जाती थी। बूढ़ी महिलाएं घर के नुस्खे बताकर दवा और इलाज के तरीके बताया करती थी। डॉक्टर के पास जाने की ज़रूरत भी महसूस नहीं होती थी। मामूली से खर्च से ही दुःख, बीमारी का इलाज हो जाया करता था। जैसे-जैसे अधिक पीछे देखते

जाओगे तो ज़माने की अधिक उज्वलता और खुशहाली नज़र आएगी। स्कूल, पाठशालाओं में उस्ताद, विद्या के गुरू प्रत्येक विद्यार्थी की चिन्ता करते थे। विद्यार्थियों के खाद्य-खुराक की भी पूर्ति किया करते थे। उस समय के विद्यार्थी होशियार, अक्लमंद, समझ और ज्ञान में विशाल हुआ करते थे। अधिकार जानते थे तो फर्ज़ को भी पूरे करते थे।

उस समय की माताएं व स्त्रियां शील, संतोष और सादगी की जीती जागती देवियां थीं। शर्म-हया के पर्दे के अंदर रहकर समाज का शान बुलंद किये रहती थीं। पतिव्रत धर्म की महानता का सिद्धांत कायम रखकर बैठी थी। उनकी संतान अच्छे संस्कार लेकर जन्म लेती थी। बचपन से ही उनकी परवरिश में धार्मिक संस्कारों की खेती बोई जाती थी। उस समय के खाद्य पदार्थ शुद्ध, बिना मिलावट के दूध, मक्खन, दही, अनाज, मसाले इस्तेमाल करने से ज्यादातर जवानों के शरीर निरोगी और स्वस्थ होते थे। मगर आज के चस्केदार और मिलावटी चीजें खाने से शरीर रोगी, दुबले, कमज़ोर, हड्डियों के पुतले नज़र आते हैं। जरा उनका पहनावा तो देखो! पहले औरतें शरीर को इस तरह से ढँक कर रखती थीं कि किसी पराये पुरुष की उन पर नज़र ना पड़े। मगर आज सड़कों और बाज़ारों में ऐसे वस्त्र पहने जाते हैं कि शरीर के अंग नग्न दिखाई देते हैं। पुरुषों के मन खराब होते हैं और फिर होते हैं बलात्कार और अपहरण!

पहले के धार्मिक स्थानों पर भी ज़रा विचार करें! उस समय के साधू-संत, सादगी और ग़रीबी में रहते थे। सामाजिक और पारिवारिक जीवन को सुखदायक बनाने में साथ देते थे। पर आज के प्रचलित काल में धार्मिक स्थान ऐय्याशी

के साधनों से भरते जा रहे हैं। साधू-संत वातानुकुलित कमरों में रहकर आजकल के आरामदेह पदार्थों का उपयोग करके आम आदमी से अधिक सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अर्थ का अनर्थ बता कर मूर्खों को गुमराह कर रहे हैं। पहले तीर्थ करने के लिए महीनों खच्चरों पर सवार होकर, अनेक कष्टों का सामना करके, विश्वास और श्रद्धा से जाकर सच्चा आराम और सच्ची शांति प्राप्त करते थे। आज अनगिनत धन खर्च करने के बावजूद तीर्थों से लोग दुःखी और अशांत होकर लौटते हैं। वहाँ जाना सिर्फ दिखावा बन कर रह गया है। न है वह श्रद्धा, न विश्वास और न ही भरोसा। देखोगे तो तीर्थों और मंदिरों में चेतावनी लिखी हुई हैं, ''अपने माल की संभाल करो। पॉकेटमारों से अपने आप को बचाओ। दलालों और धोखेबाज़ों से सावधान रहो' इत्यादि।

संसार ने बराबर जड़वाद के साधनों में प्रगति की है। पर सच्चा सुख, संतोष और शांति पंख लगाकर उड़ गए हैं। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है, जड़ पदार्थों के इस्तेमाल में बढ़ौती हो रही है, वैसे-वैसे मनुष्य तेज़ रफ्तार से अपने विनाश की अंधकारमय खाई की तरफ बढ़ता जा रहा है। चंचलता और चित्त का पागलपन मनुष्य में अपनी जड़ें मज़बूत कर रहा है।

पर इन हकीकतों पर कौन विचार करता है? विद्वान कहते है कि जो बीत गया उसे याद मत करो। अब सचाई किस में है? परिणाम पर दुःखी होना और कारण पर विचार न करना! यह कैसी समझदारी है? क्या भूतकाल के अनुभव भविष्य काल के लिए शिक्षाजनक नहीं बन सकते? विचार वाला मनुष्य तो वही है जो भूतकाल पर विचार कर, उनसे

प्राप्त अनुभवों के आधार पर अपने भविष्य का सृजन करें। पर आज सच्ची हकीकतों पर कौन विचार करता है? सच किसे भाता है?

वर्तमानकाल की शिक्षा और विद्या पर थोड़ा विचार करें। आज विद्या का लक्ष्य सिर्फ रोज़ी-रोटी कमाने और ऐय्याशी जीवन का ज़रिया बन गया है। स्कूल-कॉलेजों से जो विद्यार्थी निकलते हैं उनको सिर्फ पेट भरने और संसारी सुखों को पाने की ही शिक्षा दी जाती है। पहले विद्या का मकसद हुआ करता था, मानवता की सही राह पर चलकर अपने परिवार, समाज और देश के फर्ज़ पहचानना। आज शायद ही कोई ऐसी शिक्षा पाता है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि ज्यादातर विद्यार्थियों में जैसे पशुता के गुण बोये जाते हैं, जो बाहर निकलकर अपने कुकर्मों और बुरे आचरण से जनता को हैरान और परेशान करते हैं। आज पढ़े-लिखे और ऊंची विद्या पाए हुए लोगों के ऐसे लक्षण हैं कि जितनी ऊंची पदवी, उतनी बढ़ी रिश्वत! पदवी और स्तर का अधिकतम गलत इस्तेमाल और दुरुपयोग!!

गृहस्थी और पारिवारिक जीवन नष्ट हो रहा है। स्त्री जाति को जो लाभ मिल रहा है, उसने भारत के सनातन धर्म को बहुत बड़ी हानि पहुँचाई है। स्त्री घर की देवी और लक्ष्मी समझ कर पूजी जाती थी। वह घर गृहस्थी को अच्छी तरह से पालकर घर को पृथ्वी का स्वर्ग बनाती थी। उनका शील, सत्, चरित्र ऊंचे स्तर का हुआ करता था। मगर आज.....

कुछ समय पहले एक डॉक्टर बहन से मुलाकात हुई थी। यह बहन गर्भपात कराने में माहिर है। हाल-चाल बताते

हुए, उसने कहा कि ज्यादा से ज्यादा स्कूलों, कॉलेजों की लड़कियां और दफ्तर में नौकरी करती हुई कुंवारी और विवाहित स्त्रियां हैं, जो गर्भपात कराती हैं। घर के दोनों स्त्री-पुरुष नौकरी करते हैं, और बच्चे नौकरों और आयाओं को सौंपे जाते हैं। यह है आज स्त्री जाति को अधिक से अधिक बढ़ावा देने का परिणाम! घर बर्बाद हो रहे हैं। परिवार टूट जाते हैं। सामूहिक परिवारों का तो आज नामोनिशान तक नहीं है। यहाँ तक कि कितने ही स्त्री-पुरुष भी अलग अलग रहते हैं। तलाकों की धूम मची हुई है। क्लबों और होटलों में पढ़े-लिखे लोगों की मात्रा ज्यादा है। पहले कहा जाता था कि 'धन गया तो समझो कुछ भी नहीं गया! स्वास्थ गया तो थोड़ा कुछ गया! और अगर चरित्र गया तो समझो, सब कुछ गया!' पर आज धन गया तो सब कुछ चला गया! धन जाने की वजह से अक्सर लोग पागल हो जाते हैं, दिल का दौरा पड़ जाता है, या तो लोग आपघात कर लेते हैं। आज देखेंगे तो नज़र आएगा कि रातोंरात करोड़पति बनने की तीव्र इच्छा कैसी भड़क रही है। लाटरी, शेयर, जुआ, सट्टा, विश्वासघात, मिलावटी माल, 'ड्रग्स' इत्यादि जल्द धन कमाने के तेज तरीके हैं। इसीलिए आज धन का समाज में विशेष स्थान है। पर चरित्र नाम की कोई चीज़ नहीं रही है। आज़ पढ़ी-लिखी औरतें आज़ादी चाहती हैं, और वह आज़ादी बन चुकी है आवारागर्दी, जिसका परिणाम है चरित्र में गिरावट! यह सही है कि कुछ परिवारों में, कसबों में, जातियों में स्त्री पर जुल्म और अत्याचार किए जाते हैं। इस बात की मूल वजह है शासकों की कमज़ोरी और स्वार्थ। प्राचीन युगों में या कहो, कि पंद्रह-बीस

सदियों पहले शराब, जुआ और व्यभिचार के अड्डे हमारे भारत देश में नहीं हुआ करते थे। अधिकतर लोग धंधे, व्यापार, नौकरी या अपने पेशे में व्यस्त रहा करते थे। आज शासकों के ही गलत और स्वार्थी नीति के कारण, देश में शराब के अड्डे, जुआ के अड्डे और वैश्यालय जहाँ-तहाँ फैल गए हैं। पुरुषों में बेरोज़गारी बढ़ रही है। इन्हीं बुराइयों की वजह से परिवारों में तकरार, झगड़े और मारपीट की घटनाएं बढ़ रही हैं। जिस देश में स्त्री जाति को देवी के समान पूजा जाता था, उस देश में स्त्री जाति का अपमान हो, इस के लिए शासक ही जिम्मेवार और गुनाहगार हैं।

.....आज अलग-अलग देश कहते हैं, ''हमने प्रगति की है। हमने अपने बचाव के लिए परमाणु बम बनाए हैं। १९४५ ई. में हीरोशिमा, नागासाकी (जापान) के ऊपर उन बमों को पहली बार इस्तेमाल किया गया। जिस में तकरीबन एक लाख लोग मृत्यु के शिकार हुए और एक लाख से अधिक लोग अर्ध-जीवित अवस्था में जी रहे हैं। आज साढे पाँच दशक के बाद इन बमों ने कितनी प्रगति की होगी? कहा जाता है कि अमेरिका ने एक ऐसे बम का अविष्कार किया है जिस के फटने से समस्त एशिया खंड का विनाश हो सकता है। हमारे पड़ौसी देश भी ऐसा ही कुछ कह रहे हैं। एक तरफ विभिन्न देश शांति का राग सुना रहे हैं, दूसरी ओर विनाशकारी यंत्रों की होड़ बढ़ती जा रही है। अब तो भारत देश भी इस श्रृंखला में शामिल हो गया है।

लाखों, करोड़ों, अरबों, खरबों रुपए खर्च करके चंद्रमा को नीचे लाने की कोशिश की जा रही है। अरे जवाब

तो दो कि इस से पृथ्वी की इन्सान जाति का कौन सा कल्याण होगा? एक ओर संसार का ग़रीब समुदाय भूख की आग में जल रहा है। दूसरी तरफ इस प्रकार अनगिनित खर्चा करके तमाशा दिखाया जा रहा है। आज के पढ़े-लिखे विद्वान प्रसन्न हो रहे हैं कि ज़माना प्रगति कर रहा है। फिर कहते हैं कि चाँद पर जीवन नहीं है। क्या हमारे शास्त्र झूठे हैं? अरे, दूसरे लोकों में सूक्ष्म जीव रहते हैं, उनको हम इन चमड़ी की आँखों से कैसे देख सकते हैं? आज हर एक जीव इस सूक्ष्म सत्ता से चल रहा है, जिसे कोई देख नहीं सकता। इस पृथ्वी पर जो भी शरीर देखते हैं, वे सब जड़ मुर्दे बन जाएं, अगर वह सूक्ष्म अदृश्य सत्ता एक बार उस में से निकल जाए। मनुष्य जब अपने अंदर समाई सूक्ष्म सत्ता को नहीं देख सकता है, तो फिर चांद, सूर्य, मंगल या और दूसरे गृहों में व्यापक सूक्ष्म सत्ता को कैसे देख सकता है? अरे कोई इन अक्ल के अंधों को समझाए! अफसोस तो इस बात का है कि सब एक दूसरे के सुर में सुर मिला रह हैं। पहले ऋषि मुनि, आत्म शक्ति से अपने शरीर की सूक्ष्म सत्ता से दूसरे लोकों का भ्रमण कर सकते थे। ऋषि उदालक का पुत्र निचिकेता शरीर सहित यम लोक घूम आया था। धर्मराज युधिष्टिर शरीर सहित धर्मराज की धर्मपुरी में जा पहुँचा। अफसोस, आज के शिक्षित लोग इन बातों को नहीं मानते। बाकी इस झूठे संसार को सत्य मानते हैं! अरे भाई बहुत हो चुका! आगे मत बढ़ो! भलाई इसी में है कि वहीं रुक जाओ और संसार के कल्याण के बारे में सोचो। संसार के लोग दु:खी हैं, बीमार और रोगग्रस्त हैं। विकारों के रोग में फंस गए हैं। कुछ इस

वर्तमान के वातावरण को बदलो। यह समस्त इन्सान जाति उस एक मालिक की उपज है। सब आपस में भाई-बहन हैं। धर्म-मज़हब के नाम पर एक दूसरे का खून मत बहाओ। एक दूसरे को नाश करने की ज़िद का त्याग कर दो। यह समस्त जगत उस मालिक का परिवार है, 'वसुदेव कुटुंबम्'। अपना हठ, बड़ाई छोड़कर, एक दूसरे के साथ प्रेम से रहकर सच्चे सुख का मज़ा लो। परमात्मा ने इस जगत की रचना आनंद भोगने के लिए की है। सच्चा सुख भोगने के लिए, हमारी ही खुशी के लिए परमात्मा ने सुख के साधन भी पैदा किए हैं। इसलिए प्रत्येक वस्तु को उस परमात्मा की समझकर, सदुपयोग करेंगे तो सुख और शांति प्राप्त होगी। ओ भूले हुए बंदे! अब तो कुछ सोचो! कुछ समझदारी से काम लो! मनुष्य जीवन का महत्त्व जानो!

ओ इस सृष्टि के रचनाकार! घट-घट वासी! आप ही सब को कुछ समझदारी और सुमति दो। इन भूले हुए बंदों को सही राह दिखाओ! अज्ञान की निद्रा में डूबा इन्सान स्वयं ही ऐसी अंधेरी खाई में घसीटता जा रहा है, जहाँ हैं भड़कती ज्वाला और चारों ओर भयानक साँप! इसलिए हे जगत जननी! जगत पिता! आप ही कोई रूप धारण कर कोई राह दिखाओ!!

ओ बंदे! पुरुषार्थ ही तुम्हारा धर्म है!!

हरिद्वार तीर्थ स्थान पर, हरकी पौड़ी पर सदा ही श्रद्धालूओं, संतों, फक़ीरों की भीड़ रहती थी। आज भी बहुत सारे श्रद्धालु अपने-अपने नित्य कर्म रूपी पूजा-पाठ में व्यस्त

थे। संतों, फक़ीरों में से कुछ हवन कर रहे थे, कुछ माला जप रहे थे, कुछ शास्त्र-अभ्यास, फिर कुछ योग आसन, ध्यान आदि करने में व्यस्त थे। गंगा नदी के शीतल जल में भी कुछ श्रद्धालु स्नान कर रहे थे। अचानक एक वृद्ध सन्यासी किनारे पर खड़े होकर ज़ोरदार आवाज़ में पुकारने लगा, ''एक ज़ोरदार लहर आ रही है। सब पानी से बाहर निकल आओ।'' सन्यासी के बार-बार पुकारने पर सब लोग अपने आप को बचाने के लिए किनारे पर पहुँच गए। पर एक नौजवान उस ज़ोरदार लहर में लुड़कता नज़र आया। दर्शक अफसोस प्रकट करने लगे। किसी ने कहा, ''इस का अंत ऐसे ही होना था।'', कोई बोला, ''बेचारे की प्रारब्ध में ही ऐसी मृत्यु लिखी थी'' आदि। लेकिन एक सन्यासी अपना हवन छोड़कर तुरन्त पानी में कूद पड़ा। अच्छा तैराक मालूम पड़ता था। तेज़ी से अपनी बाँहे फैलाते हुए डूबते हुए नौजवान के पास जा पहुँचा। उस जवान को अपनी पीठ पर लादकर किनारे पर ले आया। सावधानी से उस जवान को अपनी पीठ पर सुलाकर, हवन के घी से उस जवान के पेट और पीठ पर ज़ोर से मालिश करने लगा। थोड़ी ही देर में वह नौजवान ज़ोर-ज़ोर से सांस लेने लगा और कुछ ही समय में उठ खड़ा हुआ। पास में खड़े हुए नौजवान सन्यासी को देखकर, सब बातें याद करते वह जवान सन्यासी के चरणों में सिर झुकाकर बोला, ''आज आपने मुझे नया जीवनदान दिया है। आपका यह अहसान में उम्र भर नहीं भूलूंगा।''

वशिष्ट महाराज, योग का ज्ञान देते रामजी से बोले, ''हे रामजी, पुरुषार्थ ही तेरा धर्म है।'' प्रारब्ध व पुरुषार्थ मनुष्य

जीवन रथ के दो पहिये हैं। प्रारब्ध भूतकाल (पहले किए कर्मों का फल) और पुरुषार्थ वर्तमान के लिए परिश्रम और भविष्य सुधारने का मौका है। पुरुषार्थ से न केवल प्रारब्ध के कर्मों को हल्का किया जा सकता है पर मनुष्य जीवन का आनंद और सुख भी भोगा जा सकता है।

एक गरीब को पता चला कि जंगल में एक पेड़ के नीचे संपत्ति छुपी हुई है। वह गरीब जंगल में आया। चारों ओर घूमा पर उसे वह स्थान नहीं मिला। इसलिए फिर लौट आया। जिसने उसे यह बात बताई थी उससे फिर पूछा, ''वह खज़ाना कहाँ दबा हुआ है?'' जवाब मिला, ''बीच वाले पेड़ के नीचे।'' अगले दिन अपने साथ कुदाल ले आया और मिट्टी खोदने लगा। मिट्टी के ढेर लग गए पर खज़ाने का निशान तक नहीं मिला। खफा होकर लौट आया। उस पर महात्मा ने उससे कहा, ''अरे, खोदते रहो। खज़ाना वहीं छुपा हुआ है, मिल जाएगा।'' वह लौट कर आया और फिर से खोदना शुरू किया। पसीने से लथ-पथ, शरीर में थकावट और दर्द के कारण कुछ देर आराम करने के पश्चात् फिरसे खोदना शुरू किया। आते-जाते लोग उस की हँसी उड़ा रहे थे। एक ने कहा, ''अरे मूर्ख, इतनी मेहनत क्यों कर रहा है? प्रारब्ध में लिखा होगा तो अपने आप घर बैठे ही मिल जाएगा।'' पर अब तो वह गरीब अधिक मन लगाकर मिट्टी खोदने लगा। आखिर वह खज़ाने का मटका निकल आया। वह अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से सफल हो गया।

हक़ीकत यह है कि पुरुषार्थ के बिना प्रारब्ध लंगड़ा है और प्रारब्ध बिना पुरुषार्थ अंधा!

जैसे एक अंधा और एक लंगड़ा भिखारी काफी देर से पैदल चल रहे थे। भूख के मारे व्याकुल हो रहे थे। थोड़ी दूर उन्होंने एक पेड़ देखा जिस पर पक्के आम लटक रहे थे। अंधा देख नहीं सकता था और लंगड़ा ठीक से खड़ा नहीं हो पाता था। आखिर दोनों ने मिलकर एक युक्ति निकाली। लंगड़े ने अंधे के कंधों पर चढ़कर आम तोड़े और दोनों मिलकर खाने लगे। इस प्रकार एक दूसरे का साथ दिया तो दोनों की भूख मिट गई।

शास्त्रों में लिखा है कि यह ब्रह्मांड मानव और प्रकृति के संयोग से उत्पन्न हुआ है। ईश्वर स्वयं निर्लेप और निष्क्रिय है और प्रकृति स्वंय जड़ है, उस में चेतनता नहीं है। पर ईश्वर की प्रेरणा से प्रकृति में पुरुषार्थ की शक्ति पैदा होती है। प्रकृति क्रियाशील बन जाती है। हर वस्तु, हर क्रिया प्रकृति के अधीन है, मगर प्रकृति का मूल आधार ईश्वर है।

संसार में कई मनुष्य सिर्फ प्रारब्ध के सहारे आलसी बन जाते हैं। ईश्वर ऐसे आलसी जीवों को पसंद नहीं करते। उन्हें तो वे भाते हैं जो अधिकतम पुरुषार्थ और परिश्रम कर के सफलता पाते हैं। तिल में तेल होता है पर क्या वह पीसे बिना मिल सकता है? धरती में भी खज़ाना छुपा है, मगर उसे खोदे बिना वह प्राप्त नहीं होगा।

सत्संग में प्रेरणा मिलने भी बहुत लोग कहते हैं, ''जब प्रभु की इच्छा होगी तो अपने आप हमें वहाँ खींचेगा, तब हम जाएंगे।'' शागिर्द मेहनत नहीं करेगा, सब कुछ सिर्फ ईश्वर पर छोड़ देगा। उत्तीर्ण न होने पर प्रभु को दोष देगा। इसी प्रकार मनुष्य को तो जैसे जन्मों से आदत पड़

गई है, मेहनत और परिश्रम से दूर भागने की। याद रखना चाहिए कि जब पुरुषार्थ और प्रारब्ध का बराबर संयोग होता है, तब ही जीवन के कार्य में सफलता मिलती है बालक को स्कूल में दाखिला मिला। पुस्तकें भी दी गई। मगर बालक सिर्फ खेलता ही रहा, पढ़ाई का नाम तक नहीं। फिर बिना पढ़ाई किए, बालक के कक्षा में पास होने की आशा रखना क्या समझदारी है?

परमात्मा ने मनुष्य जन्म में चेतन बुद्धि रूपी अमोलक शक्ति दी है। उस बुद्धि का अगर सही उपयोग न करके सिर्फ परमेश्वर के सहारे ही रहेंगे तो ईश्वर भी कहेंगे, ''अगर सब कुछ मुझे ही करना है, तो फिर तुझे बुद्धि देने की क्या आवश्यकता थी?'' हे मनुष्य! तुझे हर बात में प्रेरणा देने वाली बुद्धि दी गई है, वही तेरा मार्गदर्शन करेगी, मगर तुम सदा अपने विवेक को जागृत रखो!

देखो एक नन्हा बालक! सौतेली माँ ने ताना कसते उससे कहा, ''मेरी कोख से जन्म लेते तो राजाई के लायक बन जाते थे।'' बालक निकल पड़ा एक उद्देश्य लेकर। उसे सब कुछ नीरस लग रहा था। पर एक ही अभिलाषा, एक ही लक्ष्य! जंगल में पहुँचा, लीन हो गया ध्यान में! या प्रभु का दर्शन या शरीर का त्याग। सुबह, संध्या, ऐसे ही दिन बीते, महीने बीते। चारों तरफ सनसनी, अंधकार, पर बालक अपने ध्यान में मग्न! न खाना, न पीना, न विश्राम! आखिर ईश्वर को आना पड़ा और दर्शन देना पड़ा। वह छोटा बालक ध्रुव, जिसने पुरुषार्थ और प्रारब्ध को जगाया और ध्रुव भगत बनकर अटल राज्य का मालिक बना!

मनुष्य के पराक्रम में ज़बरदस्त शक्ति है। अगर संकल्प

सच्चा है तो प्रारब्ध भी पुरुषार्थ में बदला जा सकता है। नहीं तो मनुष्य के दर्जे की विशेषता और महानता कैसी? मनुष्य को ईश्वर का अंश माना जाता है। जो गुण व शक्तियां ईश्वर में हैं, वे ही उसके अंश मात्र मनुष्य में भी हैं। अब अगर कहो कि, ''ईश्वर की इच्छा'' तो क्या इस में उसके अंश मात्र मनुष्य की इच्छा नहीं है? पर कलयुग में मनुष्य भटक और भूल गया है। विषयों के संग दोष के कारण अपनी अनादि शक्तियां भूलकर कंगालों की तरह दर-दर भटक रहा है। मन का भुलावा है! धोखा है!! आत्मा कहती है, 'तुम सुख रूप हो' लेकिन मन समझता है, 'तू सुख चाहता है।'

मनुष्य का जन्म लेकर एक ऐसा अवसर मिला है जिसमें पुरुषार्थ करके अनेकों जन्मों के अंत:करण पर जमे संस्कार मिटाए जा सकते हैं। ईश्वर कल्याणकारी है। वह चाहते हैं कि हर एक जीव, मनुष्य योनी में जन्म लेकर अपने आप को जन्मों के संस्कारों से मुक्त करे।

'योग वशिष्ट' में तो पुरुषार्थ को ही धर्म माना गया है। धर्म का मूल अर्थ ही है पुरुषार्थ! दूसरे लफ्ज़ों में इसे स्व-क्रिया भी कहा गया है। मगर आज के धर्मों ने मानवता के टुकड़े-टुकड़े करके, सब को स्वार्थ के रंग में रंग दिया है। वर्तमान युग में धर्म के नाम पर जो अत्याचार पृथ्वी पर हो रहे हैं, वैसे कभी भी नहीं हुए थे। धर्म के ठेकेदार मानव-मानव के बीच नफरत की दीवार खड़ी कर रहे हैं। ऐसे निर्मम अत्याचारों से सारा इतिहास कलंकित हो गया है। धर्म के नाम पर मनुष्य को जिंदा जलाना, घातक हथियारों से बेरहमी के साथ उन्हें मारना, गोलियों

का शिकार बनाना, यह सब आम घटनाएं बन गई हैं। क्या इसी को ही आजकल के विद्वान, तालीमदान, शिक्षित लोग धर्म कहते हैं? ऐसे धर्म के ठेकेदार शास्त्रों के विरुद्ध प्रचार करके अपने आप को ही ईश्वर कहलवाकर, अपनी पूजा करवाकर, धन माल जमा करने में व्यस्त हैं। शास्त्रों का कल्याणकारी पुरुषार्थ आज अत्याचारी स्वार्थ बन गया है।

मनुष्य - समाज या राष्ट्र के आज के पुरुषार्थ से ही भविष्य के बीज बोए जाते है। आज के कष्टों, पीड़ाओं, बीमारियों, मुसीबतों के लिए गुज़रा कल वाला पुरुषार्थ दोषी है। बचपन का पुरुषार्थ जवानी का प्रारब्ध, जवानी का पुरुषार्थ वृद्ध अवस्था का प्रारब्ध, वृद्धावस्था का पुरुषार्थ हमारे नए जीवन का प्रारब्ध बन जाता है।

इसी तरह, 'हे मनुष्य! तुम स्वयं अपने प्रारब्ध के सृजनहार हो।' वर्तमान जीवन में अपने पुरुषार्थ, परिश्रम और मेहनत से जो चित्र खींचे जाते है उसी के अनुसार ईश्वर आनेवाला जीवन हमारे लिए जोड़ते हैं। इस पृथ्वी पर होने वाली आपदाएं, विपदाएं, कुदरत के प्रकोप और दर्दनाक घटनाओं को स्वयं आज का मनुष्य खुद जोड़ता है। उन के लिए ईश्वर को दोष देना मूर्खता और अज्ञान है। अब भी सोच - विचार कर, जागृत होकर, संभल कर चलें तो उज्ज्वल, सुखी और सुनहरा भविष्य खुद बना सकते हैं।

संसार को अपनी श्रेष्ठता दो तो महान्ता आपके पास आएंगी।

वासनाओं के वेग ने, डुबोया सारे जग को!

प्रकाश एक समझदार, होशियार, धीरजवान और गंभीर लड़का था।उसके हृदय में ऊंचे धार्मिक विचार थे। पिता के साथ चिदाकाशी के मंदिर में जाता था। वहाँ के महाराज को गुरू के रूप में मानता था। स्कूल की पढ़ाई पूरी होने के पश्चात् उसके पिता का देहांत हो गया। अब घर की जिम्मेदारियों का बोझ प्रकाश पर आ पड़ा। मंदिर के एक सत्संगी प्रेमी सेठ धर्मदास, प्रकाश के घर की दीन हालत देखकर उसे अपने दुकान के काम पर लगा दिया। वक्त गुज़रते, प्रकाश में सब गुण देखकर उससे अपनी कन्या निर्मला की शादी की बात की। प्रकाश की माँ को यह बात अच्छी लगी। निर्मला बेहद सुंदर, सुशील, सुडौल, फुर्त, खूबसूरत और सादे स्वभाव की लड़की थी। प्रकाश और निर्मला की जोड़ी सुंदर थी। एक वर्ष बाद प्रकाश की माँ का भी स्वर्गवास हो गया। अब घर में सिर्फ प्रकाश और निर्मला रह गए। प्रकाश हर रोज़ दुकान बंद करके संध्या के सत्संग में शरीक होता था। सत्संग के बाद सेवा का कार्य पूरा करके कुछ समय तक संत की सेवा करके फिर घर लौटता था। निर्मला इंतज़ार में बैठी रहती थी। प्रकाश के आने पर साथ मिलकर भोजन कर, आराम करते थे। हालांकि सत्संग में वैराग्य वृत्ति के विचार वाली बातें सुनकर प्रकाश का हृदय संसार के मोह - ममता, लोभ - लालच से ऊपर उठ चुका था, फिर भी निर्मला के यौवन और सुंदरता ने प्रकाश को कामुक

बना दिया था। निर्मला सादे स्वभाव वाली आज्ञाकारी स्त्री थी। पति को खुश रखने के लिए सदा तत्पर रहती थी। अपने आप को सदैव भाग्यवान समझती थी कि उसका पति उसे कितना चाहता था। तीन साल के अर्से में उसे तीन बच्चे पैदा हुए।

सत्संग की बातें प्रकाश के मन पर छाई रहती थीं। गृहस्थ जीवन में सयंम से रहना चाहिए। स्त्री की ऊपरी सुंदरता से अधिक उसके अंदर समाई खूबियों का विचार करना चाहिए। शरीर के अंदर क्या है? हड्डियां, खून, मांस और गंध! फिर आकर्षण किस बात का है? मगर फिर भी निर्मला के पास आते ही प्रकाश वासना के बहाव में बह जाता था। खुद को रोक नहीं पाता था और निर्मला उसे प्यार समझती थी। हर वक्त प्रकाश के मन में जलती वासना की आग पर खुद को 'स्वाहा' करती थी और खुद को भाग्यवान समझती थी। समय बीतते देर नहीं लगती। दस वर्षों में प्रकाश को छह संतान हुई, तीन कन्याएं और तीन पुत्र।

दुकान के बाद सत्संग पर जाना नियमित रूप से चल रहा था। समय-समय पर सत्संग में अन्य महात्मा भी आते थे। एक बार एक महात्मा ने बिलवा मंगल का किस्सा सुनाया। जवानी में बिलवा मंगल एक वैश्या के पीछे पागल था। शरीर के रस और चमड़ी के स्वाद ने उसे बिलकुल अंधा कर दिया था। एक अंधेरी रात, तेज़ बारिश में, नदी पार कर, दीवार लांघ कर वैश्या के पास आया। वैश्या ने उसे शरीर के स्वाद के लिए, इतना खतरा मोल लेने के कारण फटकारा। यह फटकार उसके कलेजे में तीर के समान चुभ गई। उसने

लौट कर संसार का त्याग किया और एक महापुरुष के संग बारह वर्ष रहकर काफी योग अभ्यास किया। गुरु की आज्ञानुसार बारह वर्षों के बाद एक सन्यासी के रूप में संसार में वापस आया। रास्ते में प्यास लगने पर एक कुएं के पास आया। एक सुंदर कन्या पानी भर रही थी। बारह वर्षों के अभ्यास उपरान्त भी उसकी वासना शांत नहीं हुई थी। आँखे उस सुंदर कन्या पर ही अटकी रही। वह कन्या के पीछे-पीछे आया। कन्या के पिता ने उसे घर बुलाया। कन्या उसे देने का प्रस्ताव रखा। सन्यासी को खुद पर घृणा आई। विचार में पड़ गया। 'वासनाओं का मुख्य द्वार नेत्र ही है। इस जगत का आकर्षण नेत्रों द्वारा ही मन में प्रवेश करता है। यह वासनाएं जन्म-जन्म से हैरान परेशान करने वाली इतनी शक्तिवान हैं कि पाप में गिराकर ही दम लेती हैं।' सन्यासी ने दो सूए लेकर अपने नेत्र फोड़ दिए।

संत तुलसीदास की भी वही दास्तान है। अपनी स्त्री चंद्रावली के काम के नशे में डूब गया। जब नशा उतरा तो उसने महापुरुषों की राह ली, खूब अभ्यास कर, अन्त में वासनाओं से छुटकारा पाकर, जीवन सफल कर, अमर हो गया।

आज प्रकाश के दिलोदिमाग में बड़ी हलचल मच गई। उसका हृदय वैसे तो वैराग्य वृत्ति से भरा था पर कामाग्नि को रोक नहीं पाता था। स्त्री है तो क्या हुआ? क्या वह सिर्फ काम तृष्णा बुझाने का ज़रिया है?

शास्त्र बतलाते हैं कि, 'सिर्फ संतान की चाहत के लिए ही स्त्री के पास जाना चाहिए! बाकी सब व्यभिचार है! पाप है!' आज सारी रात प्रकाश सो नहीं पाया। आराम कुर्सी पर बैठ कर सारी रात सत्संग की शिक्षाओं पर विचार

करने लगा।

'क्या यह सब पिछले जन्म की वासनाएं हैं? भक्ति और सेवा के गुण भी हैं मुझमें! पर क्या उनके साथ पिछले जन्म की काम वासना भी लिये फिर रहा हूँ? अगर यह जीवन भी इस तरह कामपूर्ति में बीत जाएगा, तो अगले जन्म में कैसे बच पाऊंगा? यह वासनाएं हर जन्म में पीछा करती रहेंगी। हरएक मनुष्य का जन्म उसकी वासनाओं का ही रूप है। आज पचास वर्ष बीत गए हैं। छह संतान भी पैदा हो गईं, फिर भी वासना की अग्नि शांत नहीं हुई! निर्मला को देखते ही मन पर वासना का नशा चढ़ जाता है, क्या करूं? कैसे बचूं इस वासना की आँधी से?'

अगले दिन मन में दृढ निश्चय कर, गुरू से समय लेकर, पूरी दास्तान उन्हें सुनाई। गुरू ने जाना कि प्रकाश में न तो कोई बुरी आदत है, न लोभ - लालच और न ही बैर - विरोध है। सत्संग की ओर झुकाव और सेवाभाव भी है। पर यह काम की अग्नि कभी शांत होने वाली नहीं है। यह आग तो उम्र के साथ बढ़ती ही जाती है। फ़िर अगर ऐसी सुंदर, सादगी भरी, अबोध स्त्री संग हो, तो तृष्णा कभी शांत नहीं होगी। यह ऐसा जिज्ञासु है जो जन्म - जन्म के विकारों और वासनाओं से मुक्ति पाना चाहता है। वासनाओं में फंसा इन्सान एक बार गिरा तो बस गिरता ही रहेगा। इसलिए उसे ऐसा रास्ता बताया जाए जो वह आने वाले जन्मों में गिरने से बच जाए।'

प्रकाश की आँखे नम्र हो गई और गुरू के मुख पर रहम का प्रकाश! गुरू ने प्यार और हमदर्दी भरे शब्दों में कहा, ''बच्चे, जीवन का बड़ा भाग बीत गया है। तुम्हारे

फर्ज़ लगभग पूरे हो चुके हैं। हमारे शास्त्रों में सोच-विचार करके मनुष्य के जीवन को चार हिस्सों में बाँटा गया है। ब्रह्मचर्य पूरा करके भले ही गृहस्थ का आनंद उठाओ। बाल-बच्चों को जन्म देकर कारोबार उन्हें सौंपो और शेष जिन्दगी परमात्मा के स्मरण और समाज सेवा में लगाओ। मनुष्य का शरीर परमात्मा की रचना है। इस शरीर को परमात्मा के बनाए नियमों पर चलाना आवश्यक है। हर मनुष्य के जीवन पर संस्कारों और वासनाओं का प्रबल ज़ोर है। उसका बहाव बदलने के लिए ही मनुष्य जन्म एक ऐसा अवसर मिला है, जिसमें ऐसी विकारी वासनाओं को खत्म किया जा सकता है। उसका उपयुक्त उपाय है अध्यात्म पुरुषार्थ! तुम्हारे मन में जो काम के विषय और अध्यात्म प्राप्ति का संघर्ष है, उसके लिए तुम्हें वर्तमान स्थिति का त्याग करना पड़ेगा। हिमालय की तरफ हमारे गुरूजनों का आश्रम है। वहाँ रहकर अभ्यास करो। लगातार अभ्यास से तुम्हारे मन से विकारी वासनाएं खुद ही नष्ट हो जाएंगी और तुम्हारा अंत:करण शुद्ध और निर्मल हो जाएगा। अब जैसे कि तुम्हारे बाल बच्चे बढ़े हो गए हैं, बड़ा बेटा कमाने लायक हो गया है। परमात्मा ने तुम्हारे लिए द्वार खोल दिया है। कारोबार बेटे को सौंपकर घर और स्त्री का त्याग करो! शास्त्र कहते हैं कि जिनका आखिरी समय में स्त्री में मोह रहता है, उन्हें अगला जन्म वैश्या का ही मिलता है।'

गुरूदेव की शिक्षा ने प्रकाश पर गहरा असर किया। उसका मन हल्का हो गया। घर में आ कर अब अत्यंत गंभीर और शांत रहने लगा। निर्मला के नज़दीक आकर वासना तो ज़रूर जागृत होती थी परन्तु वह उसे दबा देता था।

और आखिर एक रात घर छोड़कर गुरुदेव की बताई राह पर चल दिया। फिर भी मन से वासना का त्याग इतना सरल नहीं था। घर की और निर्मला की याद उसे परेशान करती रहती थी। पर यहाँ के सुंदर और शांतिजनक वातावरण में योग-अभ्यास का असर लगातार बढ़ता गया। मन वासनाओं से रिक्त होता गया। इसी तरह अभ्यास करते जीवन के तीस वर्ष और भी बीत गए।

अपने मन के संकल्प से जब ध्यान एक बिन्दु पर नियंत्रित किया जाता है, फिर वह चाहे दुनैवी हो या आत्मिक, उसकी सफलता के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं।

हर वक्त उस ईश्वर का ध्यान, जागृति और विवेक़ की सावधानी से, मन को बाहर भटकने से रोका जा सकता है। हमारी भीतरी शक्तियां अक्सर बाहरी भटकने में नष्ट होती हैं। मन को भला-बुरा पहचानने की शक्ति है, परन्तु यह शक्ति पहचान कर, मन को भटकने से रोक कर, योग और अभ्यास द्वारा विषयों से दूर रहें, तो वासनाओं का संहार करने में अवश्य सफलता मिलेगी। यह सफलता यूंही नहीं मिलती, परन्तु लगातार होशियारी और पूर्ण योग द्वारा ही मिलती है।

महात्मा प्रकाश चैतन्य नगर में आया था। लोगों के समूह हर रोज़ सुबह-शाम उसका उपदेश सुनने आते थे। वह आँखों पर सदैव काला चश्मा पहना रहता था। आम लोग समझते थे कि शायद महात्मा नेत्रहीन हैं। पर सेवकों से ज्ञात हुआ कि नेत्रों को सत्संग के समय बिलकुल ढँक कर रखते थे, जैसे संगत में आए स्त्री तथा पुरुषों पर उनकी दृष्टि न पड़े। आज शाम के सत्संग के पश्चात्, एक श्रद्धालू

माता ने, अपने बेटे और बहू के साथ आकर माथा टेका, और अर्ज़ किया, ''स्वामी, तीस वर्ष हो गए पति से बिछुड़े, आप आशीर्वाद दो कि पति का पता मिले और उन्हें तलाश करूं। कुछ वक्त की खामोशी के बाद महात्मा बोले, ''माता, अब पति की खोज का ख्याल मन पर भी मत लाओ। तुम्हारा पति कब का मालिक से मिलकर एक हो गया है। तुम्हें आशीर्वाद है कि तुम अपने परिवार के साथ सुख से रहो।' प्रकाश चैतन्य के मन में अब वासना का ज़रा भी तत्व नहीं रहा। वह हर समय ईश्वर चिन्तन में मग्न रहता था। फिर भी सदैव सावधान रहकर किसी से अकेले में नहीं मिलता था।

किसने डाला विघ्न आकर इस जहाँ में!

वे पाँचों ही सहेलियां हर रोज़ आपस में मिलकर खूब ठहाके मारती और हँसतीं थीं। बारी-बारी से एक दूसरे के घर पर इकट्ठी होतीं थीं। अश्लील और गंदा मज़ाक कर हँस-हँस कर लोटपोट होती थीं। आपस में कहा करती थीं कि हँसने से खून की वृद्धि होती है और यह भी तो एक प्रकार का योग है।

एक दिन कमला के घर हर रोज़ की भांति तमाशा चल रहा था। अचानक रसोई से कुछ गिरने की आवाज़ आई। कमला तुरन्त दौड़कर रसोई में गई। काम करने वाली बाई

के हाथों से बर्तन धोते-धोते एक प्लेट गिर कर टूट गई थी। बस एक ही पल में वह हँसी और मज़ाक का वातावरण महाभारत में परिवर्तित हो गया। कमला ऊंची आवाज़ में कामवाली बाई को डाँट रही थी। उस पर हाथ उठाने ही वाली थी कि कामवाली बाई चिल्ला कर बोली, ''खबरदार! हाथ चलाओगी तो पुलिस में जाकर रिपोर्ट दर्ज कराऊंगी।''

कमला की चारों ही सहेलियां यह नज़ारा देखकर एक-एक कर खिसक गईं। यह कैसी हँसी हुई? क्या सिर्फ नकल करने से खून बढ़ेगा या शांति मिलेगी? हक़ीकत को दबाकर लोग हँसने की कितनी भी नकल करें पर क्या उससे चित्त में भड़कती हुई ज्वाला शांत होगी? जीवन के सत्य को पहचानकर जो हकीकत और असलियत की ओट लेकर अभ्यास करते हैं, वे ही इन अग्नियों को बुझानें में सफल होते हैं।

ऐसी ही एक और हक़ीकत है। राजू एक सर्कस में जोकर बन लोगों को हँसाने का काम किया करता था। दर्शक राजू जोकर की खूब सराहना करते थे। उस के चुटकलों, मज़ाक, मसखरी और नकल करने के अंदाज़ को देखकर बहुत हँसते और प्रसन्न होते थे। मगर उसकी घरेलू ज़िंदगी बहुत दुःखभरी थी। घर पर बीवी-बच्चों का साथ नहीं था। घर में आता तो उसका दिमाग घबरा जाता था। एक दिन एक डाक्टर के पास गया। मनोवैज्ञानिक ने उसके घर के हालात सुनकर कहा, ''भाई, अपने आप को खुश रखने का प्रयत्न करो। खुश रहने और हँसने से दिल के गम उड़ जाते हैं। बहुत हँसना हो तो सर्कस में जाओ। वहाँ पर राजू जोकर तुम्हें खूब हँसाएगा और तुम्हारा दिल बहलाएगा। तुम वहाँ जाकर अपना दिल बहलाओ।''

मरीज़ ने कहा, ''डाक्टर साहब, मैं वही राजू जोकर हूँ। सर्कस में नौकरी करता हूँ। हँसने और हँसाने का नाटक करता हूँ। पर मेरी घरेलू ज़िंदगी तो महादु:खी है।'' यह सुन डाक्टर का दिमाग चकराने लगा। वह सोचने लगा, ''तब तो मनोविज्ञान कुछ और ही चीज़ है।''

आज का जीवन हर मनुष्य के लिए बोझ-सा बन गया है। जीवन का सच्चा रस, आनंद, खुशी और मौज शायद ही कोई भोगता है। तो क्या ये सब विशेषताएं सिर्फ बाहरी हैं? मनुष्य जितना ही बाहर की ओर दौड़ता है, उतना ही दु:खी होता है। असलियत को छोड़कर प्रत्येक आदमी नकल की ही ओर दौड़ रहा है।

हमारे नज़दीक ही एक प्रेमी रहा करता था। हर रोज नियमानुसार सुबह योग केंद्र में जाया करता था। वहाँ 'हास्य योग' याने ठहाके मारकर हँसने का योग अभ्यास किया करते थे। हालांकि अपने-आप में यह एक अच्छी बात है और उत्तम योग भी है। पर प्रश्न यह उठता है कि क्या हम उस में से असली लाभ पाते हैं? यह प्रेमी जैसे ही योग केंद्र से लौटकर घर आता था, तो घर पर कलह-क्लेश शुरू हो जाता था। पत्नी से खिटपिट, बेटे और बहू को बातें सुनाना। न सिर्फ घर पर मगर ऑफिस में भी सब कर्मचारी उससे नाराज़ रहते हैं। अब विचार कीजिये कि क्या यह सच्चा योग है? हमारे दैनिक व्यवहार में, उठने-बैठने में यह योग शामिल हो तो कितना न आनंद आ जाए! कितने ऐसे सज्जन हैं जो 'हास्य योग' तो नहीं करते, पर उनका व्यवहार बहुत मीठा, हँसमुख रहता हैं जिसकी वजह से उनको अपने काम में आनंद आता है। नौकर हो या

मालिक, पर व्यवहार सब के साथ मीठा, बिना किसी भेद-भाव रखे, यही सच्चा योग है।

आज ज़माने की हवा ही कुछ ऐसी चल रही है। हर बात में नकल और दिखावा है। ज़माने के रंग देखकर हैरत होती है।

कुछ समय पहले की बात है। एक कन्या, जिस को शादी किये हुए छह-सात महिने ही हुए थे, से भेंट हुई। अकेले में उससे हाल-चाल पूछा, तो वह रो पड़ी। घर में सुख-साधन युक्त, साहूकार धन-माल वाला, फिर भी यह कन्या दुःखी। पूछने पर बताया कि, ''मेरी सास और ननद प्रातः जल्दी उठती हैं। घर में गुरू ग्रंथ साहब जी की सवारी है। उस का प्रकाश कर पाठ करने के पश्चात् गुरुद्वारे जाती हैं। मगर जैसे ही वहाँ से लौटती हैं, वैसे ही मेरे ऊपर मानों आग छिड़कती हैं। खाने पर, पकाने पर, काम करने के तरीके पर टोकें, ताने, खिटपिट। सही मानों में मेरी ज़िंदगी नर्क कर देती हैं। मेरे पति देर रात दुकान से घर लौटते हैं, तो उनसे मेरी शिकायतें करती हैं। फिर तो मुझे पति की भी गालियां सुननी पड़ती है। दो-तीन बार तो हाथ भी उठा चुका है।'' अब आप ही बताओ इस पूजा-पाठ करने से क्या लाभ? यह दिखावा और ढोंग नहीं है तो और क्या है? हाल ही की बात है, एक बहन मुझसे मिलने आई। अच्छे धार्मिक विचारों वाली है। बातें करते उससे पूछा, ''बहन, क्या आपने गुरू किया है?'' बस, यह बात सुनते ही उसका चहरा लाल हो गया। आँखों से दर्द भरा गुस्सा प्रकट हुआ। शायद मेरा यह सवाल पूछना सही नहीं था। फिर भी दिल बाँधकर उससे पूछ

बैठा, ''बहन, कोई गलती या बेअदबी हुई मुझसे इस सवाल पूछने पर? अगर ऐसी कोई बात हो तो मुझे क्षमा करना।''

वह बहन दु:ख भरी आवाज़ में बोली, ''भैय्या, पहले तो यह बताओ कि गुरू करना क्या ज़रूरी है? अगर है भी तो, क्या आजकल ऐसे आदर्शी, निर्लेप और भेदभाव रहित गुरू मिलना कठिन है। मेरे साथ जो घटना घटी, मैं वह आपको सुनाती हूँ, पर कृपया उसे अपने तक ही सीमित रखें।''

मेरी ऑफिस की सहेली अपने गुरू की बहुत ही प्रशंसा किया करती थी। बहुत ही बार मुझ पर भी ज़ोर डाल कर कहती थी, ''गुरू करो तो अन्त में मोक्ष मिलेगा।'' आखिर एक बार उस सहेली की बातों में आ गई। उससे कहा कि गुरू के साथ समय लेकर चलेंगे। सही वक्त पर अपनी सहेली के साथ उस गुरू के स्थान पर गई। सहेली ने पहले ही कह दिया था, कि गुरू की हर आज्ञा का पालन करना। कमरे के अंदर गई। करीब चालीस वर्ष की आयु वाला एक हट्टा-कट्टा, केसरी रंग के वस्त्र पहना हुआ महात्मा आरामकुर्सी पर बैठा मुस्करा रहा था। मेरा नाम, उम्र, पेशा पूछने के बाद बोला, ''उसने तुम्हारी सारी जानकारी दी है। तुम भाग्यवान हो, तुम मोक्ष की अधिकारी बनोगी। आरामकुर्सी से उठकर वह मेरे करीब आया और ऐसा बदसलूकी वाला व्यवहार किया कि में हाँफते-दौड़ते ज़ोर से दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आई। शर्म के मारे मैंने उस ऑफिस से भी नौकरी छोड़ दी। अब घर पर ही बच्चों को ट्यूशन देती हूँ। भैय्या, मैं पूछती हूँ अगर केसरी वस्त्र पहनने वालों का ऐसा आचरण है, तो आम लोगों की क्या बात की

जाए? ऐसे ढ़ोंगी सन्त जहाँ-तहाँ फैले हुए हैं। मैं समझती हूँ कि आजकल संत बनना आसान हो गया है, पर इन्सान बनना मुश्किल। आजकल अपनी प्रसिद्धी कराने के आसान से साधन हैं - कैसेट, टी.वी., प्रोग्राम इत्यादि।''

इस बहन की दास्तान सुनकर दिमाग चकराने लगा। आज समय ऐसा है कि सच को कोई पहचान नहीं पाता। बाहरी वेशभूषा, केसरी पीले वस्त्र देख कर लोग भ्रमित हो जाते हैं। फिर भी शिक्षित मनुष्य हक़ीकत को न समझकर बेकार की प्रशंसा और सराहना करते हैं। वे कहते हैं कि संतों की निंदा मत करो! पर भाई, ऐसे लोगों को संत कैसे कहते हो?

वर्तमान समय में अनेक घटनाएं घट रही हैं जिनको सुनकर हर एक अपनी बुद्धिनुसार शिक्षा पा सकता है। तत्वदर्शी घटना की गहराई में जाकर हक़ीकत को खोज निकालते हैं, और संसार के सामने रखते हैं। पर आज कितने लोग हैं, जो सत्य सुनना पसंद करते हैं? एक कहावत है, ''सच मिर्च की तरह और झूठ गुड़ की तरह लगता है।' इसी तरह आज बनावट और दिखावा लोगों को पसंद आता है। धमाकेदार प्रसंग कर, नाम व प्रसिद्ध के लिए उत्सव किए जाते हैं, जो लोगों को पसंद आते हैं और अखबारों के 'कॉलम' काले होते रहते हैं।

सच की सुगंध दूर से ही मालूम पड़ जाती है। मृतक शरीर को कितना भी फूलों से सजाएं उन्हें सुगंधित करें, पर समय बीतते आखिर जब फूल कुम्ह्ला जाएंगे तो वे भी बदबू से भर जाएंगे! नकली जीवन जीने से कोई लाभ नहीं होता। ऐसा करने से तो हम अपने आप को धोखा

देते हैं। इसलिए अपने चारों ओर फैले मनुष्यों की बेकार बातों की नकल नहीं करनी चाहिए। यह बनावट से जुड़ी ज़िंदगी, जो मात्र बाहरी सजावट और सुंदरता की तरफ आकर्षित करती है, ऐसी बेकार, आलसी और वाहियात् ज़िंदगी हमें मानवता के स्तर से गिराती है। मनुष्य को प्राकृतिक मर्यादाओं और नियमों में रहकर ही सच्चा आनंद मिलता है। ऐसी सच्ची हँसी, खुशी और आनंद पाने के लिए हमें अपनी जिंदगी का रुख बदलना होगा। आजकल के ढंग की अंधी नकल से दूर रहना होगा। शरीर तंदरुस्त हैं तो सिर्फ उस की ही रक्षा, संभाल और सेवा में अपने भीतर की शक्तियों को नाश करते हैं। साधारणतः सुरक्षा ज़रूरी है, पर सारा समय खाने-पीने, कपड़े-लट्टे, मनोरंजन या ऐश के पीछे अपना जीवन बर्बाद नहीं करना है। सिर्फ शरीर बनकर जीने से क्या लाभ?

दूसरी बात तो हमें अपनी निजी कमज़ोरियों को दूर करना चाहिये। किसी ने कोई बात कही, फिर चाहे कितनी भी अहम् हो, अपनी विचारधारा का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। अंधविश्वासी बन उस बात को श्रद्धा समझना बड़ी भूल है। आज संसार धोखे, दंभ और पाखंड से भरा हुआ है। इसलिए निजी विचारधारा का भरपूर प्रयोग करके बात को मूल से समझने का प्रयत्न करना चाहिए। सच्चाई परख कर ही उसका अनुसरण करना चाहिए।

मनुष्य के जीवन में हर पल में कितनी तरह के बाहरी प्रभाव होते हैं। बुद्धि द्वारा हम हर दिन घटित घटनाओं से भिन्न-भिन्न शिक्षाएं ग्रहण करते हैं। यह प्रभाव व अनुभव हमारे निजी ख्यालों पर काफी गहरी छाप छोड़ते हैं। नकल

करने वाले अधिकतर ऐसे अवसरों तले जल्द ही प्रभावित हो जाते हैं। बाहरी प्रभावों की गंदगी हमारे अंदर जमा होती जाती है। इसलिए सदा अपनी असलियत में रहो। नकल करना छोड़ दो। यह सब नकली तौर-तरीके सिर्फ धन कमाने के साधन बनते जा रहे है। पता नहीं, ''किसने डाला है विघ्न इस जहाँ में!''

निज आनंद की प्राप्ति - सादगी और सच्चाई से होती है।

सेठ आनंदराम का कारोबार काफी बढ़ गया था। उसके लिए दो अलग शहरों में, दो नए ऑफिस खोलना ज़रूरी हो गया। ऑफिसों के लिए मैनेजरों की ज़रूरत थी। बहुत खोज करने के बाद, ऑफिस के लिए दो अच्छी जगहें भी मिल गईं, और दो योग्य मैनेजेर भी नियुक्त किए गए। सेठ आनंदराम ने दोनों मैनेजरों को खास हिदायतें देकर काम करने के ज़रूरी तरीके बताए। ग्राहकों को माल बेचकर वक्त पर उधार वसूल किया जाए। खर्च पर संयम, माल की देखभाल, संभाल, सफाई, नौकरों पर नज़र यह सब आवश्यक बातें समझाकर, खुद निश्चिंत होकर व्यापार के काम से दूसरे शहरों में चले गए।

पूरे एक साल पश्चात् दौरे से लौटने पर, सेठ आनंदराम ने दोनों आफिसों का हिसाब-किताब देखकर, दोनों मैनेजरों की काबिलियत परखी। साल का हिसाब-किताब तो बराबर मिला, पर यह देखकर उन्हें हैरत हुई, कि हालांकि कारोबार

दोनों ही मैनेजर अच्छा चला रहे थे, पर एक ने कारोबार में अच्छी खासी बचत दिखाई और दूसरे ने खर्च और आमदनी बराबर - बराबर बताई।

एक ऑफिस में, जहाँ का मैनेजर विवेकचंद था, उससे जाकर मिले। ऑफिस में पहुँचते ही, आफिस की व्यवस्था, अच्छी सफाई देख कर सेठ प्रसन्न हो गए। सेठ ने देखा कि विवेकचंद ने सामान सफाई के साथ अच्छे ढंग से रखा था। नौकर पूरे नियंत्रण में थे। टेलिफोन, मोटर और खाने - पीने की छूट होने पर भी उनका दुरुपयोग नहीं हो रहा था। ग्राहकों से समय पर उधार वसूल किए जा रहे थे। इस प्रकार विवेकचंद के साथ बैठकर, वहाँ का हाल - चाल देखकर बहुत खुश हुए। मन में सोचा कि ऐसे ईमानदार, सच्चे और सुचेत इन्सान को कारोबार में भागीदार बनाया जाए तो लाभदायक होगा। मन में यह विचारकर दूसरी ऑफिस में पहुँचे जहाँ का मैनेजर सचानंद था।

सचानंद की ऑफिस में आते ही सेठ नाराज़ हो गए। माल ढंग से नहीं रखा गया था। उसके ऊपर धूल मिट्टी जमा हो गई थी। सब नौकर अपनी मर्जी अनुसार काम कर रहे थे। खर्च का कोई हिसाब नहीं! टेलिफोन, मोटर, खान - पान और अतिरिक्त खर्च ज़रूरत से ज्यादा हो रहे थे। ग्राहकों से भी उधार सही वक्त पर वसूल नहीं किए जा रहे थे।

सेठ आनंदराम इस प्रकार के काम - काज की व्यवस्था और व्यवहार से काफी परेशान और दुःखी हो गए। सचानंद को बुलवाकर कुछ आवश्यक प्रश्न किए, जिन के जवाब सचानंद दे नहीं पाए। सेठ आनंदराम ने अफसोस प्रकट

करते हुए कहा, ''प्यारे सचानंद, तुम्हारी ईमानदारी और सच्चाई पर मुझे पूरा विश्वास है, मगर सजगता और उन्मुखता की कमी के कारण कारोबार प्रगति नहीं कर पाया है। माल की सही संभाल, सफाई, नौकरों पर नियंत्रण, ग्राहकों से सही समय पर उधार की वसूली जैसे आवश्यक काम नहीं हुए हैं। यह भी याद रखना चाहिए कि चाहे मालिक की ओर से सब सुख-सुविधाएं दी गई हों फिर भी उनका उपयोग, गंभीरता और ज़रूरत अनुसार ही किया जाना चाहिए। अपनी इच्छा, लोभ और शौक से मिले पदार्थों का उपयोग, दुरुपयोग करने के बराबर है। देखो फोन, बिजली, खान पान और अन्य कितने सारे बेकार के खर्च हो रहे हैं।

रहन सहन न रति मात्र, सुख साधन जो भोगे

चौरासी के चक्कर काटे, यम की मार खाए

सोच विचार से रहे जो, प्रभू का प्यार सो पाए।

यह सही है कि ईश्वर ने प्रकृति की हर वस्तु, साधन और पदार्थ, मनुष्य के सुख-आराम और सहज के लिए उत्पन्न किए हैं। लेकिन प्यारे! जो इनका ज़रूरत से ज्यादा इस्तेमाल और उपयोग करता है, वह अपने ऊपर कर्ज़ चढ़ा देता है, जो उसे वक्त आने पर चुकाना पड़ेगा। धन, दौलत, सुख, आराम अगर ज्यादा हो तो उसे परोपकार और दूसरों की सेवा में उपयोग करना चाहिए। शरीर नाशवंत है और हमें यह सारे सुख-स्वाद ज्यादातर इस नाशवंत शरीर के लिए ही चाहिऐं। आत्मा को इन चीज़ों की बिल्कुल भी ज़रूरत नहीं, क्योंकि आत्मा स्वयं सुख स्वरूप है। यह शरीर जो मन के साथ मिलकर सुखों की सामग्री चाहता है, वही हमें इंद्रियों का गुलाम बना देता है। इसीलिए ही चौरासी

चक्कर का अंत नहीं होता। अंदर से सजग होकर, विवेकी बनकर, सोच-विचार से जीवन का निर्वाह करेंगे तो प्रकृति के ऋृण से बचे रहेंगे।

आवश्यकताएं करो कम, ऐश आराम का त्याग करो,
सादा, सच्चा व सयंम में रहकर, असली आनंद पाओ,
दैवी गुणों से असली सुंदरता बढ़ाओ,
संत सेवा में लगाओ, बचा हुआ जीवन, समय और धन!

बारीकी से देखेंगे तो जीवन में कितनी सामग्री अनावश्यक, दिखावे और एक दूसरे की देखा-देखी की वजह से है। अधिक से अधिक सुख भोगने की लालसा हमें पाप की तरफ ले जाती है। चरित्र और चलन ढीले पड़ जाते हैं। पाप से कमाए हुए सुख-साधन आगे चलकर रोग और बीमारी को जन्म देते हैं। हो सकता है कि शायद कुछ लोगों को ये पाप पच जाएं। बहुत लोगों को यह शंका होती है कि पापी लोग सुखी क्यों हैं? अलबत्ता दिखाई नहीं देता कि वे कहीं ज्यादा मानसिक दुखों से पीड़ित हैं। हालांकि उन्हें सुखी देखकर यह शंका होना स्वभाविक है। इसी बात का एक उदाहरण यहाँ देते हैं।

एक सेठ को दो पुत्र थे, जिन के लिए अथाह धन-संपत्ति इकट्ठी कर के आखिर में मर जाता है। दोनों भाई आधी-आधी संपत्ति के हिस्सेदार हैं। एक पुत्र अच्छे सयंम वाला और शुद्ध विचारों वाला है। मगर दूसरा पुत्र, ऐय्याश, अनावश्यक खर्च करने वाला है। उसके दोस्त-यार हैं जिनके साथ जुआ, शराब, क्लब इत्यादि में जाकर पैसे उड़ाता है। जब कारोबार का मैनेजर उसे बहुत समझाता है तो वह उसे गालियां देता है और डाँटता है। मैनेजर बैंक में जाकर शिकायत

करता है कि उसे खाते से पैसे निकालने न दो, क्योंकि वह उन्हें बुरे कर्मों में लगाता है। बैंक के मैनेजर ने कहा, ''भाई, जब तक उसके खाते में रकम है, उस की सही बराबर है, तब तक किसी भी कायदे अनुसार हम उसे पैसे देने से मना नहीं कर सकते। हाँ, जिस वक्त उस के खाते में पैसे कम हो जाएंगे, तब उसके चेक लौटा दिए जाऐंगे।'' यही सिद्धांत है उन पापियों के साथ। जब तक उनके पिछले जन्मों के पुण्य उनके हिसाब में जमा हैं तब तक, वे पाप की कमाई को हज़म कर पाते हैं। पर यह भी याद रखना चाहिए, कि पाप करने से अच्छे संस्कारों का नाश होता है। भविष्य के लिए कोई बचत नहीं, तो सुख मिलने की आशा भी नहीं। इसी सिद्धांत के अनुसार कुछ नवजात बच्चे दुःख, रोग, कष्टों और पीड़ाओं के साथ जन्म लेते हैं।

हर कोई चाहता है कि उसे सच्चा सुख और मन की शांति मिले, पर लालची और ईर्ष्या भरे विचारों से सुख और शांति नहीं मिलती। सच्ची मौज और शांति तो ऐसे विचार त्यागने से ही मिलती है। कोई भी अशांति और दुःख के साथ जीना नहीं चाहता। हर कोई सुख और शांति की तलाश में है। मगर यह स्वार्थी भाव से नहीं बल्कि परमार्थी साधनों से ही मिल सकते हैं। साधारणतः हर कोई समझता है कि नौकरी, पेशा करते भाग्यानुसार जो मिलता है, उसका भरपूर उपयोग कर मज़े करना चाहिए। देखा जाए तो ऑफिस में नौकरी करते तनख्वाह जितना काम नहीं करते। ऑफिस की कितनी चीज़े जैसे स्टेशनरी और दूसरा कितना सारा सामान, किसी के जाने बिना या अनुमति लिए

बिना उठाने की आदत बहुत सारे लोगों में होती है। टेलिफोन, कार या खाने-पीने की सुविधा का बहुत ज्यादा दुरुपयोग किया जा रहा है। कुछ लोग तो समझते हैं कि उन सुविधाओं पर उनका पूर्ण अधिकार है। क्या यह बात सिद्धांत अनुसार सही है?

आज संसार को आवश्यकता है ऐसे आचार्यों और गुरुओं की जो ऊपर बताए हुए सिद्धांतों को सही रूप से समझाएं और उसे अमल करने की प्रेरणा दें। धार्मिक गुरूओं को इसी बात की फिक्र रहती है कि इस कार्य के लिए धन इकट्ठा किया जाए और श्रद्धालु शिष्यों की संख्या बढ़ाई जाए। प्रचार कार्य की पैरवी होती है या नहीं, इस की किसी को परवाह नहीं। नतीजा यह है कि आज बहुत सारे लोगों का धर्म की तरफ ध्यान रहते हुए भी उनका व्यवहार और कारोबार गलत और स्वार्थी बन गया है। काम-काज, कारोबार, पेशा, नौकरी में आम जनता के सुख कल्याण की किसी को भी चिंता नहीं होती। आम श्रद्धालु शिष्यों में सुधार तब ही आएगा जब धर्म आचार्य व गुरू, सुख, धन, मान और शिष्य बनाने का त्याग करेंगे। ऐसे धर्मगुरू प्रचार कार्य को अमल में लाने की भरपूर कोशिश करें। आदि गुरू ऐसा ही ध्यान दिया करते थे अपने शिष्यों पर!

कलकत्ते में रानी राशमणी श्री रामकृष्ण की परम शिष्या थी। सप्ताह में दो-तीन बार मीलों का फासला घोड़े गाड़ी में बैठकर, गुरु के चरणों में आकर बैठती थीं। एक बार श्री रामकृष्ण प्रवचन कर रहे थे। रानी आकर उनके पास बैठी। रानी का शरीर तो वहाँ बैठा था पर मन में अन्य ख्याल दौड़ रहे थे। अंतर्यामी श्री रामकृष्ण ने रानी को

चपत् लगाकर कहा, ''मैं बैठा तुम्हें उपदेश दे रहा हूँ और तुम बैठी किसी मुकदमे के बारे में सोच रही हो।'' रानी ने माफी मांगते हुए कहा, ''स्वामी, माफ करना, भूल हो गई और हमें आशीर्वाद दीजिए।'' ऐसे ही धर्मगुरु शिष्यों का उदार करने में समर्थ होते हैं। बाकी वे जो धन, मान, सुख-संपत्ति और शिष्यों की संख्या बढ़ाने में ही व्यस्त हैं, उनसे उदार की उम्मीद भी कैसे लगाई जा सकती है?

हर इन्सान अपने जीवन में सफलता, स्फूर्ति और संपूर्णता प्राप्त कर सकता है। ऐसी महान शक्ति हर इंसान को प्राप्त है। हर इन्सान का जीवन सत्, रज और तम गुणों का संगम है। यह सारा जगत् इन तीनों गुणों के अंदर ही खेलता रहता है। जिसके अंदर में चेतनता शक्ति जागृत है, वह अपना जीवन सादगी, संयम, समभाव व निष्काम सेवा में रहकर, ईश्वर की इस महालीला का न सिर्फ आनंद भोगता है, पर अपना इस पृथ्वी पर आना सफलतापूर्वक निभा कर, ईश्वर की कृपा का पात्र होता है। बाकी जो नींद में घिरे, इस माया की लहरों में बह जाते हैं, वे तो मानों अपना खेत ही उजाड़ देते हैं।

मरता मरता - जगु मुआ - मरि भी ना जानिया कोइ !
ऐसी मरणी जो मरे - बहुर न मरणा होइ !!

अनादि काल से परमात्मा की यह सुंदर और विचित्र सृष्टि चली आ रही है। सृष्टि का आरंभ कैसे हुआ? सृजन कैसे

हुआ? यह रहस्य जानने की बहुत ही ऋषियों, मुनियों, विद्वानों और वैज्ञानिकों ने कोशिश की और ज्ञान सागर में अनंत डुबकियां लगाईं, पर आज तक यह रहस्य कोई नहीं जान पाया है। अनेक प्रकार के जीव कीट, पतंग, कीड़े, जानवर, पक्षी, परिंदे आदि जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। ईश्वर की इस सुंदर रचना में मनुष्य भी जन्म लेता है और समयानुसार मृत्यु को पाता है। अलबत्ता यह रहस्य जानने के लिए मनुष्य आज भी आतुर है कि मौत के बाद इन्सान कहाँ जाता है, उसका क्या हाल होता है?

शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य के अंदर जो है, जिसे सूक्ष्म-शरीर कहते हैं, वह कभी भी नहीं मरता। साधारण मनुष्य सूक्ष्म-शरीर के बारे में कुछ नहीं जानते। हाँ, गीता का पाठ करके यह दोहराते हैं कि आत्मा अमर है। सही में आत्मा अमर है। वह न जन्म लेती है, न मरती है। मगर आत्मा के ऊपर कर्मों, वासनाओं और विकारों के पर्दे चढ़े हुए हैं, और जब तक चढ़े हुए हैं, जो सूक्ष्म रूप में हैं, वे उस आत्मा के साथ सूक्ष्म जीव के रूप में जन्म और मरण के चक्कर में फिरते रहते हैं।

जगत्गुरू शंकराचार्य ने सूक्ष्म-शरीर पर प्रकाश डाला कि, ''इसे सुख-दुःख का ज्ञान रहता है। इसमें मन और बुद्धि समाए रहते हैं। इसमें जीव से संबंधित १७ कलाएं रहती हैं। बाहरी स्थूल देह के समाप्त होने पर भी यह अंदर का सूक्ष्म-शरीर नहीं मरता, परन्तु तुरन्त निकलकर ब्रह्मलोक की राह लेता है।''

हमारा भारत देश इस आध्यात्मिक विद्या का कुछ समय पहले आचार्य था। मगर आज का भारतवासी सिर्फ जड़वाद

की तरफ झुकता जा रहा है। इन बातों की तरफ शायद ही कोई ध्यान देता है। बल्कि इन बातों को बेबुनियाद और अविश्वास की नज़रों से देखा जा रहा है। अलग - अलग पंथों वाले ऐसी अलौकिक और रहस्यमय बातों को अपनी बुद्धिनुसार वर्णन कर रहे हैं। कुछ तो बेबुनियाद तर्क देकर ऋषियों - मुनियों के अनुभवों की आलोचना करते हैं। पर इसके बावजूद विदेश में कितने वैज्ञानिक इन बातों की बहुत गहराई से खोज कर रहे हैं, जिस के बारे में वे कितनी ही पुस्तकें लिख चुके हैं।

आत्मा और सूक्ष्म - शरीर में फर्क है। सूक्ष्म - शरीर जो आत्मा के ऊपर वस्त्र के रूप में है, वही वैसे ही अंगों वाला है, जो हमारे बाहरी रूप में हैं। मृत्यु के पश्चात् शरीर को ज़रा गौर से देखो। हाथ, पैर, आँखे, कान, नाक, मुँह इत्यादि दिखते तो हैं, पर वे क्रियाहीन हैं। इस बात से ज़ाहिर होता है कि इन इंद्रियों को अलग - अलग अपने कर्मोंनुसार चलाने वाली कुछ भीतरी इंद्रियां भी थीं, जो अब निकल गई हैं। वह सूक्ष्म - शरीर पांच कोषों से युक्त है। अन्नमय कोष, मनमय कोष, प्राणमय कोष, ज्ञानमय कोष और आनंदमय कोष। शरीर का आधार अन्न और प्राण है। लेकिन वह सूक्ष्म - शरीर ज्ञान और कर्म, इंद्रियों, उनके रस, मन और बुद्धि से भी युक्त रहता है। कर्म के अनुवार वह केवल शरीर बदलता रहता है। सूक्ष्म - शरीर को अपने कई जन्मों का स्मरण, गर्भ के अन्दर रहने तक होता है।

जब ज्ञान और विज्ञान वाला सूक्ष्म - शरीर भी नाश होता है तब सिर्फ आनंद तत्व ही रहता है। उसे जन्म नहीं लेना पड़ता क्योंकि उसकी आत्मा आनंद स्वरूप है। अब

सवाल उठता है कि जीव जब तक सूक्ष्म-शरीरों की हस्ती में हैं, जब तक यह स्थूल देह में जन्म लें, तब तक वह कहाँ रहता है? हर एक जीव का कर्मोंनुसार अपना स्तर रहता है। उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ प्रकार के जीव होते हैं। इस तरह ऐसे जीवों को कुछ समय तक निवास करने के लिए अलग-अलग लोक हैं। जैसे गीता में भगवान कृष्ण ने बताया है कि, ''योग से घिरा जीव कुछ समय पुण्य लोक में रह कर फिर किसी उत्तम कुल में जन्म लेता है।'' फिर किसी और जगह पर कहते हैं, ''वासनाओं में भटका इन्सान सदा भटकता ही रहता है। उसे न इस लोक में सुख प्राप्त है और न परलोक में!'' मतलब कि पुण्य करने वाले पुण्य लोक में जाते हैं। स्वर्ग के सुख भोगकर, पुण्य क्षीण होने पर फिर अपनी अवस्थानुसार मृत्यु-लोक में ऐसे ही कुल और अवस्था में जन्म लेते हैं। इससे ज्ञात होता है कि मरने के बाद सूक्ष्म-शरीर कुछ अन्य लोकों में निवास करते हैं। सूक्ष्म जीव को इस चमड़े की आँखों द्वारा देखा नहीं जा सकता है, इसीलिए ऐसा कहना कि ऊपरी लोकों में जीव नहीं और वहाँ जीवन नहीं है, यह सरासर निराधार है।

परलोक विद्या की जानकारी वालों ने कुछ हक़ीकतें इकट्ठी की हैं। परलोक में रहती आत्माओं के साथ उनकी वार्तालाप भी हुई है। और उन्हें कुछ संदेशे भी मिले हैं। इन संदेशों से यह बात ज़ाहिर होती है कि उत्तम जीव ऊपरी लोकों में जाकर फिर मृत्युलोक में जन्म नहीं लेना चाहते हैं, फिर भी तीन कारणोंवश उन्हें कुछ समय पश्चात् जन्म लेना पड़ता है। १. अपने संचित कर्मोंनुसार, २. कुछ संबंधियों और

परिवार के सदस्यों से अधिक प्रेम होने के कारण, ३. मृत्युलोक में कोई विशेष कार्य करने के लिए।

हमारे शास्त्र हमें साफ बताते हैं कि जिस जीव ने अब तक जन्म नहीं लिया उस जीव आत्मा से बात की जा सकती है। यह विद्या सीखनी पड़ती है।

बहुत समय पहले फ्रांस के एक वैज्ञानिक ऐलन कारडिक ने काफी अनुसंधान करने के बाद Heaven and Hell नामक पुस्तक लिखी। उसमें अपने बहुत सारे अनुभव बयान किए हैं। उसमें बतलाया है कि, ''बहुत सारी आत्माओं से वार्तालाप हुआ, जिससे यह जानकारी मिली कि तीन प्रकार के सूक्ष्म जीव परलोक में जाते हैं। १. सुखी आत्मा, २. मध्यस्थ (जिन्हें न सुख है और न दुःख), ३. दुःखी जीव (जो अपना पूरा जीवन स्वार्थ के अंध में बुरे कर्मों में लगाते हैं।) वे ऐसी ही एक सुख आत्मा का हाल इस तरह लिखते हैं।

प्रश्न : ऐ प्राणी! अपनी अवस्था के बारे में कुछ बताओगे कि कहाँ और किस हाल में हो?

उत्तर : जैसे कि मैंने अपना जीवन साफ, सुथरा और सच्चाई से व्यतीत किया था, बुराई से सदा दूर रहता था, इस लिए मैं एक सुंदर लोक में बहुत सुखी हूँ। आप दुआ करें कि मैं सदैव इसी लोक में रहूँ। इस लोक में वही सुखी हैं जिन्होंने पृथ्वी पर अपनी जीवन नम्रता, निष्ठा व संतोष से बिताया होगा। पृथ्वी पर जिन्हें आप खुशकिस्मत और सुखी मानते हो, वे ही पास वाले लोकों में महादुःखी हैं। वहाँ गर्म हवाएं चलती हैं। जो थोड़ा जीने के लिए गलत राह पर चलते हैं, उन्हें जीवन के इन पास वाले लोकों में बहुत दुर्गति प्राप्त होती है। अब इस लोक में मैं सुख

और आनंद के साथ निवास करता हूँ। अगर मालिक की पृथ्वी पर जन्म लेने के लिए आज्ञा हुई, तो मैं फिर से जन्म लेकर उनसे माफी माँगूंगा, जिनको मैंने सताया था, जिनका बुरा सोचा था। यहाँ पता चलता है कि वह अहंकार है, जो सब क्लेशों का कारण है। जो जीव ताकत और सत्ता का दुरुपयोग करते हैं, ज़ुल्म और बेरहमी की चाल चलकर, धन, पदवी और गौरव हासिल करते हैं, वे यहाँ आकर बहुत दुःखी और परेशान होते हैं और पछताते हैं। पर अब पछताने से कुछ नहीं होता।''

एक दूसरे वैज्ञानिक ने अपने पुस्तक On the Edge of Etheric में इस तरह वर्णन किया है ''इस जगत में हमारा शरीर दो हिस्सों से जुड़ा है। एक ज़ाहिर (स्थूल) और दूसरा अदृश्य (सूक्ष्म)। बाहरी शरीर को शक्ति भीतरी शरीर की है। बाहरी इंद्रियां भीतरी इंद्रियों की ताकत से ही कार्य कर सकती हैं। दोनों शरीर आपस में जुड़े हुए हैं। बाहर के शरीर की मृत्यु से भीतरी शरीर नहीं मरता, पर वह जैसे मकान को खाली कर चला जाता है। उस शरीर में सब गुण और यादें मौजूद रहती हैं। सूक्ष्म-शरीर में ज्ञान शक्ति कायम रहती है। स्थूल-शरीर के किए कर्म भी सूक्ष्म-शरीर से जुड़े रहते हैं। सूक्ष्म-शरीर को प्रत्यक्ष देखा नहीं जा सकता, क्योंकि न तो उसका कोई रूप है न रंग, न कोई शक्ल न कोई आकार!''

यह विचार हमारे अंधविश्वासी भारतवासी का नहीं है पर विश्व के विख्यात खोजनिक वैज्ञानिक का है।

आज हमारे भारतवासी भ्रान्ति, भ्रमों और वहमों में ऐसे फंसे हैं कि इन हक़ीकतों पर विचार भी नहीं करते। बल्कि

उन्हे काल्पनिक और बेबुनियाद कहते हैं। गुरू अर्जुनदेव महाराज ने ऐसे लोकों का वर्णन सुखमनी साहब में किया है। जिस का हिंदी कविता में सुंदर शब्दों में अनुवाद इस प्रकार है।

मंजिल मुश्किल, जाना है दूर, जहाँ बात नहीं मीलों कोसों की
इस मंज़िल पर मूर्ख ले पूंजी नाम के स्मरण की
मंजिल मुश्किल, जाना है दूर, रास्ते पर घोर अंधकार,
हाथ में ले सतनाम का दीपक, रोशन होगी तेरी राह,
मंजिल मुश्किल, जाना है दूर, जहाँ कोई किसी को नहीं जानता,
जानता है जानने वाला, जो जानता है और पहचानता,
मंजिल मुश्किल, जाना है दूर, जहाँ तेज़ तीखी धूप जलाती है,
नाम का स्मरण छांव करे जहाँ, छांव जो चित को शीतल करे,
मंजिल मुश्किल, जाना है दूर, जहाँ पानी के लिए जीव तरसे,
बादल बन भगवान का नाम, नानक अमृत खूब बरसे।

गीता में भगवान कृष्ण ने प्रमाण देकर कहा है, ''जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र उतारकर नए वस्त्र पहनता है, वैसे ही जीव आत्मा भी निश्चित समय पर एक शरीर त्यागकर दूसरा नया शरीर ग्रहण करती है।'' अर्जुन को समझाते भगवान बोले, ''अगर तुम लड़ाई में मारे जाओगे तो फिर जाकर दूसरा जन्म लेंगे। फिर चिंता का क्या कारण है?''

यह गहरा विज्ञान है, जिसको जानने से ज्ञात होगा कि मृत्यु है ही नहीं! मौत का भय अज्ञान है। सदियों पहले विदेश के वैज्ञानिक इन बातों पर विश्वास नहीं करते थे। पर जब स्वयं अभ्यास करके खोज की तब हक़ीकत के आधार पर न सिर्फ खुद विश्वास किया, परन्तु सारे संसार को हमारे वेदांत के उसूलों पर विश्वास दिलवाया। आज पश्चिमी वैज्ञानिकों की गिनती बहुत ज्यादा है जिन्होंने अपने

खुद के अनुभवों और अभ्यास के आधार पर अनेक पुस्तकें लिख कर छपवाई हैं। जिन में मुख्य हैं: ऐलन कारडिक की Heaven & Hell, ए. विकलैंड की Thirty Years Among The Dead, सर ओलीवर लॉज की Raymond, मिस्टर आर्थर फेन्डली की On the Edge of the Etheric, मिस्टर एम.ए. वालिस की A Guide To Medium Snip और सर आर्थर कोलन की New Renelation।

इन लेखकों ने कोई नई खोजना नहीं की है। लेकिन अभ्यास करके उन बातों को स्वयं आज़माया और अनुभव किया है। उनके यह सब अनुभव हमारे शास्त्रों से बिलकुल मिलते हैं। उन्होंने भिन्न-भिन्न धर्मों की आत्माओं का बयान लिया है। हम जड़वाद की खोजनाओं में विश्वास करते हैं क्योंकि वे साधन स्थूल रूप में हमारे सामने मौजूद हैं। मगर आध्यात्मिक बातों की खोज पर विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे तो केवल स्वयं अनुभव की हुई बातें हैं व उनका कोई स्थूल रूप नहीं है।

कवि कालीदास ने एक जगह वर्णन किया है कि, ''जो कुछ आदि से है, वह सब अच्छा इसलिए नहीं हो सकता, क्योंकि वह प्राचीन है व कोई नई बात इसलिए निंदाजनक नहीं हैं क्योंकि वह नई हैं।'' समझदारी इसी में है कि किसी भी बात को बहुत बारीकी से जाँचकर देखा जाए और सूक्ष्म समझ और जानकारी के साथ अभ्यास करके, ध्यान से उस बात को विश्वास के साथ कबूल करना चाहिए, जो हर मनुष्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक ऐलन कारडिक अपनी रचना में वर्णन करते हैं, ''हमारा वर्तमान, हमें इस संसार चक्कर में इतना बाँध कर काबू

में रखता है कि किसी को भी भविष्य (परलोक) का ख्याल तक नहीं आता। इन्सान मरता है तो परिवार के ऊपर जैसे पहाड़ टूट पड़ता है। हर सदस्य अपने-अपने सुख और स्वार्थ को याद करके मरे हुए व्यक्ति के लिए रोता है। पर यह कोई नहीं विचार करता कि उस मृतक का परलोक में क्या हाल हुआ होगा! साधारणत: लोग मृत्यु को नफरत की निगाह से देखते हैं, पर यह नहीं सोचते कि मृत्यु एक आशा की झलक है। इस तरह सगे-संबंधी भी आखिरी मिलन पर दु:ख, शोक, संताप करते हैं, परन्तु जीव के संसारी दुखों से आज़ाद होने का सोच कर खुश नहीं होते। स्त्री कहेगी, ''अब इसके सिवाय मैं कैसे जिऊंगी? मुझे कौन संभालेगा?'' माँ कहेगी, ''मेरा होनहार बेटा चला गया।'' इत्यादि। पर यह नहीं समझते कि उसे मौत के बाद अधिक और सच्चा सुख मिलेगा। यह इसलिए है, क्योंकि मृत्यु के बारे में परलोक की जानकारी कोई नहीं रखता। एलन कारडिक ने प्राणी के इस स्थूल-शरीर छोड़ने के बाद की अवस्था का वर्णन इस तरह किया है, ''अंतिम समय प्राणी को जो पीड़ा होती है उसका पूरा दायित्व सूक्ष्म-शरीर और स्थूल-शरीर पर है। अगर सूक्ष्म-शरीर स्थूल-शरीर को तुरन्त छोड़ कर जाता है, तो प्राणी को बिल्कुल तकलीफ नहीं महसूस होगी। पर जितनी देर सूक्ष्म-शरीर को स्थूल-शरीर छोड़ने में लगेगी, उतना ही प्राणी पीड़ा सहन करता रहेगा। ऐसी तकलीफें सहन करने के चार प्रकार हैं! १) जैसे ही सूक्ष्म-शरीर स्थूल-शरीर का त्याग करता है, वैसे ही शरीर कार्यहीन बन जाता है। उस समय तकलीफ बहुत थोड़ी सी होती है (जैसे अचानक दिल की धड़कन बंद हो जाना।)

२) स्थूल - शरीर व सूक्ष्म - शरीर का मोह वश मिले रहना। इस हालत में हर एक अंग से सूक्ष्म - शरीर का संबंध टूटने पर सख्त पीड़ा होती है। ३) भक्ति, ज्ञान या योग अभ्यास द्वारा जिनका शरीर से लगाव नहीं है, वे तो जैसे अंतिम यात्रा के लिए सदैव तैयार रहते हैं। उनको पीड़ा होते हुए भी कोई तकलीफ महसूस नहीं होती। वे खुशी से शरीर का त्याग करते हैं। ४) विषयी इन्सान स्थूल - शरीर छोड़ने के बाद भी सूक्ष्म - शरीर से उसके आसपास घूमते रहते हैं। वे तो स्थूल - शरीर में फिर से प्रवेश करने की कोशिश भी करते हैं। कभी - कभी तो शम्शान तक जाकर भी वे प्राणी जीवित हो उठते हैं। इसी कारण वैदिक विधि अनुसार हमारे सनातन धर्म में शरीर का अग्नि संस्कार किया जाता है। जैसे वे कनिष्ठ जीव, जिनके सूक्ष्म - शरीर तब तक भटकते रहते हैं, जब तक अपने स्थूल - शरीर को खत्म होते हुए नहीं देखते, फिर वहाँ से चले जाते हैं। यह तो कुछ सदियों से जो गैर - हिन्दू दूसरे धर्मों या मज़हबों में चले गए, उन्हें सनातन धर्म के विरुद्ध शरीर को ज़मीन में गाड़ते हैं। नतीजन उन कनिष्ठ जीवों की रूहें कुछ समय तक भटकती रहती हैं। अक्सर देखा गया है कि कब्रिस्तान में कितनी ही भटकती रूहें बसती हैं, जिन्हें हम भूत, प्रेत या किसी देवी - देवता का वास कहते हैं। ऐसी भटकती रूहों को इतनी ताकत होती है कि किसी भी जीवित प्राणी की देह में निवास कर सकती हैं।

ऐलन कारडिक के पुस्तक 'हेवन एंड हैल' में ऐसा एक उदाहरण दिया गया है कि उसके एक मित्र सदस्य ने अर्ज़ किया कि उसके सूक्ष्म - शरीर को उसके स्थूल - शरीर की

मृत्यु उपरान्त बुलाकर उससे परलोक का हाल पूछा जाए। जब उसका स्थूल-शरीर छूटा, यानें उसकी मृत्यु हुई, तब बहुत सारे रूहों की जानकारी रखने वालों को बुलाया गया, जो इस विद्या को जानते थे, और जिनको यह सब जानने का शौक भी था, वे सब हाज़िर थे। सब के समक्ष मिस्टर सेन्सन के सूक्ष्म-शरीर को बुलाया गया। उनसे इस प्रकार के सवाल किए गए जिन के उत्तर भी यहाँ बताए गए हैं।

प्रश्न : आपकी अंतिम इच्छानुसार आपसे परलोक के हाल-चाल जानने के लिए आपको यहाँ बुलाया गया है। आपसे मिलकर हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है।

उत्तर : मैं उस मालिक का शुक्रगुज़ार हूँ जिसने मुझे आपसे मिलने और बात करने की अनुमति दी है।

प्रश्न : आपने स्थूल-शरीर में बहुत पीड़ा भोगी थी। अब आपकी हालत कैसी है?

उत्तर : हाँ! यहाँ आने पर मैं बिल्कुल स्वस्थ हो गया हूँ। यहाँ आने के पश्चात् कुछ समय के लिए तो कुछ समझ में नहीं आता था। विचार साफ नहीं रहते, दुनिया के ख्याल कुछ समय तक छाए रहते थे। मगर मेरी प्रार्थना का अभ्यास काम में आ गया। मैंने मालिक से प्रार्थना की, जो मालिक ने कबूल की। अब मेरा मन स्थिर है।

प्रश्न : शरीर की मृत्यु पश्चात् यह परलोक की शक्ति कितने समय में आती है?

उत्तर : वह मनुष्य के कर्मों पर आधारित है। संसारी विषयी इन्सान को बहुत समय लगता है। पर धार्मिक, विश्वासी जीवों को तो कुछ पहर ही लगते हैं।

प्रश्न : आपको कैसे ज्ञात होता है कि आप परलोक में हो?

उत्तर : जैसे इस वक्त मैं आपको देख सकता हूँ परन्तु आप मुझे नहीं देख सकते। मुझे आप जैसा स्थूल-शरीर नहीं है। मैं कहीं भी एक क्षण में पहुँचने की शक्ति रखता हूँ। अब मैं बिलकुल शांति से सुखी हूँ। मेरा लोक विशाल है। मेरा मालिक भी अनंत है।

प्रश्न : स्थूल-शरीर छोड़ते वक्त क्या आपकी समझ कायम थी?

उत्तर : हाँ, यह समझ सब की कायम रहती है, क्योंकि यह तो आत्मा की शक्ति है। जिनका जीवित अवस्था में शरीर से लगाव नहीं रहता, उनका स्थूल-शरीर से नाता तुरन्त टूट जाता है। वे खुले आकाश में हवा के ज़ोर पर किसी अदम लोक में पहुँच जाते हैं। ऐसे जीव उस वक्त बेहद सुख महसूस करते हैं। ऐ मित्रो! इसलिए आप संसार में ज्यादा मत अटको। यह जीवन एक यात्रा है। हिम्मत रखो। किसीका दिल मत दुखाओ। सत्य और इन्साफ से अपना जीवन व्यतीत करो। संसार के साधनों का प्रयोग कम किया करो। किसी भी विषय से सिर्फ अपना काम निकालो, मगर उनमें अधिक दिलचस्पी मत दिखाओ।

संसारी आदतों में फंसे जीवों की परलोक में दुगर्ति होती है। जिन की आदतें बुरी हैं वे परलोक की यात्रा में बहुत दु:खी होते हैं। उनके बारे में तो कितने संदेशे आए हैं कि वे सूक्ष्म जीव वहाँ उन विषयों के लिए, जिनका उन्होंने स्थूल-शरीर में अधिक उपयोग किया था, बहुत तड़पते हैं। उनको वहाँ वे विषय तो नहीं मिलते, बल्कि मुँह की खानी पड़ती है। उन का वर्णन गुरू साहब की वाणी आसादीवार में किया हुआ है:

भोग खूब भोगता है बंदा, अंततः खाक में मिल जाएगा,
चाहे जग में नाम खूब हो, दूत डालें फाँसी का फंदा,
आगे परखें नेकी बदी, खुलता है कर्मों का परचा,
छुपने की जगह नहीं मिलेगी, रोना कोई नहीं सुनेगा,
मन के अँधे यह जन्म अमोलक, अपने हाथों बर्बाद किया।

इसलिए समझदारी यही है कि विषयों की गुलामी से, बुरी आदतों से सदैव दूर रहें और अपने को बचाएं।

जो जीव आत्महत्या करते हैं, वे न सिर्फ मानव शरीर के लिए अयोग्य बनते हैं बल्कि उनकी सूक्ष्म जीवात्मा भी बहुत पीड़ाएं सहती हैं। इसलिए ऐसे दुःखी मनुष्यों को संसार के दुःख सब्र के साथ सहना चाहिए, मगर आत्महत्या का ख्याल तक नहीं करना चाहिए। बहुत हालतों में जब तक असली जिंदगी की हद है, तब तक प्रेत बन कर रहना पड़ता है। इस का ज़िक्र ऐलन कारडिक ने अपने पुस्तक में किया है। अमेरिका की प्रसिद्ध अभिनेत्री मिस वरजीन्या और फ्रांस के एक सैनिक की आत्माओं से वार्तालाप करते उनका दिल दहलाने वाला अनुभव लिखा है। उस पर एक लेखक ने लिखा कि, ''हमें यह जीवन अपने फर्ज़ों को पूरा करने के लिए मिला है। इसको नाश करने का अधिकार हमें कदाचित नहीं है। यह बड़ा गुनाह माना जाता है। जो अपना जीवन वक्त से पहले समाप्त करते हैं, उन्हें परलोक में ज्यादा ही पीड़ा मिलती है। जिस उद्देश्य से मनुष्य जीवन मिला है, वह उद्देश्य अधूरा रह जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि भूल से भी आत्महत्या का विचार न करे। संसार में असहनीय घटनाएं पेश आएं तो हिम्मत से उनका सामना करें। यह तकलीफें जीवन को साफ कर देती हैं।

जैसे सोने को जितना आग में फूंकेंगे उतना अधिक शुद्ध होगा।

कभी-कभी ये सूक्ष्म जीवात्माएं दूसरों को बचाने की भी कोशिश करती हैं। लेखक ने ऐसी ही एक आत्मा का ज़िक्र किया है। अमेरिका में वेटीगन नामक एक शहर है, वहाँ के एक युवक पर केस चल रहा था, कि उसने कालेज की एक लड़की की हत्या की है। एक दिन अचानक डॉक्टर वेकलैंड की पत्नी में उस मरी हुई आत्मा ने प्रवेश किया। डॉक्टर की पत्नी चीख-चीख कर कहने लगी, ''इस युवक ने मेरी हत्या नहीं की है। बल्कि मैंने तो खुदकुशी की थी।'' डॉक्टर हैरान होकर अपनी पत्नी का नाम लेकर बोले, ''यह तुम क्या कह रही हो? इतना चीख कर क्यों बात कर रही हो?''

तब डॉक्टर की पत्नी बोली, ''मैं मरीना लैम्बर्ट हूँ, जिस की हत्या का इल्ज़ाम उस युवक पर डाला जा रहा है। मैंने बेवकूफी से एक दिन पोटेशियम सायनाइड ली, और उस युवक को डराया। युवक ने मुझे बहुत रोका पर मैं खा बैठी। अब इस समय मैं नर्क में बहुत दुःखी हूँ, पछता रही हूँ। मैंने कई बार ''कोर्ट'' में आकर इस बारे में बताना चाहा, परन्तु मेरी बात सुनता कौन है? (जिस प्रकार प्रेत आत्माओं को कोई देख नहीं पाता, उसी प्रकार उनकी आवाज़ भी नहीं सुनी जा सकती है।)

डॉक्टर की पत्नी ने चिल्ला कर जो कहना था, कह दिया और फिर ऐसे सो गई जैसे कुछ हुआ ही नहीं। कुछ समय बाद जब नींद से जागी, तो उसने अपने पति को बताया कि ''मैंने एक सपना देखा। एक जीव मेरे शरीर

में प्रवेश कर रहा है। फिर पता नहीं क्या हुआ।'' जो बातें उसने बताईं थी उनके बारे में उसे कुछ जानकारी नहीं थी।

भटकती रूहें बहुतों को परेशान भी करती हैं, तो कई लोगों को सुख भी देती हैं। बहुत समय पहले एक युवक की किसी हादसे में मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी का उसमें बहुत मोह था। एक रात नींद में उसने महसूस किया कि कोई उसके शरीर को छूकर उसे प्यार कर रहा था। नींद से जागते ही वह चिल्लानें लगी। अक्सर कितनी ही रातों को वह ऐसा महसूस करती थी। फिर एक महात्मा से उसने यह ज़िक्र किया। महात्मा ने कहा, ''मोह वश तुम्हारे पति की आत्मा भटक रही है। अब उसके निमित्त हवन-यज्ञ करवाओ, भागवत पाठ रखवाओ तो उसे मुक्ति मिले।'' और सही में वह सब करने के बाद, उसे फिर कभी शरीर पर हाथों का स्पर्श महसूस नहीं हुआ।

करीब साठ साल पहले की बात है। मद्रास में एक राय बहादुर एम. नर्सिंह नामक शख्स था। उसका नौजवान बेटा अचानक गुज़र गया, जिस के मोह में वह खुद बहुत दुःखी, व्याकुल और परेशान रहता था। कुछ मित्रों की सलाह से, कुछ जानकार लोगों की मदद से उसने अपने पुत्र की आत्मा से बात की, जिसके बाद उसके मन को ढाढस मिला। यह सारी वार्ता उसने एक पुस्तक 'नागेंद्र सापी' में वर्णित की हैं, जिसका कुछ अंश नीचे किया गया है:

प्रश्न : बेटे अब तुम कहाँ निवास करते हो? मैं तुम्हारे बिना बहुत दुःखी हो गया हूँ।

उत्तर : मैं इस वक्त जिस लोक में हूँ वहाँ बहुत सुखी हूँ।

आप मेरे लिए शोक न करें। हर इन्सान को अपनी आयु की समाप्ति उपरान्त पृथ्वी लोक छोड़ना पड़ता है। मैं अब इन बंधनों से मुक्त हूँ।

प्रश्न : क्या सब आत्माएं तुम्हारी तरह खुश हैं?

उत्तर : हर जीवात्मा को कर्मोंनुसार लोक प्राप्त होते हैं। अच्छे और नेक कर्मों वाली आत्माएं ऊपरी लोकों में निवास करती हैं। वे उस लोक से भी ज्यादा ऊँचे लोकों में जा सकती हैं। मगर कनिष्ठ जीवात्माएं निचले लोकों में दुःखी रहती हैं। वे ऊपर नहीं चढ़ सकती हैं।

प्रश्न : हमने जो आपके लिए श्राद्ध, पिंड तर्पण आदि किए, उसका तुम्हें पता है?

उत्तर : जी हाँ! जानता हूँ और उन भावनाओं से मुझे राहत भी मिली। खास कर जो जीवात्माएं दुःखी होती हैं, उनके लिए यह श्राद्ध व पिंड राहत देते हैं। वे दुःखी आत्माएं उनका इंतज़ार करती रहती हैं। दूसरी हालत् में ऐसी दुःखी आत्माएं अपने परिवार वालों को परेशान करती हैं।

प्रश्न : क्या तुम फिर से पृथ्वी पर आना चाहते हो?

उत्तर : यहाँ परलोक में आने के बाद कोई भी फिर से पृथ्वी पर आना नहीं चाहेगा, क्योंकि यहाँ पर पृथ्वी की तरह बंधन नहीं हैं। मगर हर किसी के कर्मों का हिसाब यहाँ होता है, जिसके अनुसार कुछ समय पश्चात् उन जीवात्माओं को दूसरा जन्म स्थूल देह में लेना पड़ता है।

प्रश्न : दूसरा जन्म लेने तक, आप वहाँ कैसे रहते हो?

उत्तर : यहाँ पर हमारा समय ईश्वर स्मरण में गुज़रता है। हम बिना किसी रोक-थाम के अन्य लोकों में जा सकते हैं। पृथ्वी वाले घर में भी जा सकते हैं। हमारे सगे-संबंधी

जब हमें याद करते हैं, हमारे निमित्त पूजा-पाठ या दान आदि करते हैं, तो वहाँ हमारी मौजूदगी ज़रूर समझी जानी चाहिए। खुद सपनों में भी हम उनसे मिलते रहते हैं।

इस तरह खोजियों ने अनेक प्रकार के प्रमाणों से यह दिखाया है, कि यह स्थूल-शरीर छोड़ने के पश्चात् सूक्ष्म-शरीर में जीव को अदृश्य लोकों में जाना पड़ता है। उन सूक्ष्म-शरीरों को कर्मों, आदतों, वासनाओं और संस्कारों अनुसार दुःखों व सुखों का अनुभव और अहसास होता है।

चलते जीवन में भी अधिकतर विचारकर देखेंगे तो मनुष्य शारीरिक दुःखों से अधिक मानसिक दुःखों (न दिखाई देने वाले) से दुःखी होते हैं। विचारों के दुःख, काल्पनिक दुःख और मानसिक पीड़ाएं, शारीरिक दुःखों से कहीं अधिक परेशान करती हैं।

जगत् और उस की सारी रचना अदृश्य चेतन सत्ता के आधार पर कार्य कर रही है। बाहर के पदार्थ तथा पशु-पक्षियों या मनुष्य के शरीर जड़ और नाशवंत हैं। जड़ पदार्थों की अपनी कोई क्रिया शक्ति नहीं है। मगर उनका आधार ही चेतन सत्ता है। संसार में बहुत सारे बिजली के छोटे बड़े उपकरण कार्य कर रहे हैं। पर उनमें जो बिजली की शक्ति है, वह अदृश्य सूक्ष्म है। कार्य करने वाले उपकरण और उनके द्वारा होते हुए कार्य तो बराबर बाहरी दृष्टि से देखे जा सकते हैं, मगर अचरज तो यह है, कि उन्हें चलाने वाली शक्ति या सत्ता दिखाई नहीं देती।

इसलिए यह मानना कि अन्य लोक नहीं हैं क्योंकि वे दिखाई नहीं देते, यह विचार कहाँ तक सही है? वेदों-शास्त्रों में इनका स्पष्ट वर्णन किया हुआ है। अनेकों लोक हैं जिन

में अनेक जीव निवास करते हैं। अनादि काल से परमात्मा की यह रचना चली आ रही है। इस सूक्ष्म, अदृश्य शक्ति को समझने और पहचानने की कला भी सिर्फ मनुष्य जन्म में प्राप्त होती है। पर यह तब होगा जब हम सूक्ष्मता की तरफ कदम बढ़ाएंगे।

एक राजा अपने मंत्री पर क्रोधित हुए। सो उसे एक ऊंची मिनार की कोठरी में बंद कर दिया। मंत्री की पतिव्रत स्त्री ने रात के समय उससे पूछा कि क्या वह कुछ मदद कर सकती है। मंत्री ने कहा, ''तुम तुरन्त जाकर एक मकड़ी पकड़ लाओ। थोड़ी शहद, एक महीन डोरी और एक मोटी रस्सी ले आओ।'' उस औरत को हैरत तो हुई, पर पति का कहना मानकर तुरन्त एक मकड़ी पकड़ के दूसरी बताई हुई चीज़ें लेकर आई। मंत्री ने कहा कि ''मकड़ी के आगे की तरफ थोड़ी सी शहद लगाकर उसे मिनार के ऊपर भेजो। उसकी पिछली टाँगो पर महीन सी डोरी बाँधो।'' उसकी पत्नी ने कथनानुसार किया। शहद को पाने के लिए मकड़ी ऊपर चढ़ती कोठरी की खिड़की पर आ पहुँची। मंत्री ने उसे पकड़ कर पतली डोरी अपने हाथों में धर ली। अब उसने अपनी पत्नी से कहा, ''पहले थोड़ा मोटा-सा धागा बाँधो और बाद में मोटी रस्सी भेजो।'' रस्सी ऊपर पहुँचते ही, उस रस्सी की सहायता से मंत्री नीचे उतर कर भाग निकला।

ऐसी कला परमात्मा ने सिर्फ मनुष्य देह में ही दी है। जैसे सूक्ष्म विचारों द्वारा, प्राणों की रस्सी को पकड़कर स्थूलता की कैद से मुक्त हो जाएं।

हम शरीर को सिर्फ शरीर समझते हैं। हमारा सम्बंध शरीर

द्वारा सिर्फ इंद्रियो के रस भोगने तक सीमित है। ज्यादा से ज्यादा कोई मुर्दा चीरकर देखेंगे कि अंदर क्या भरा है!

हक़ीकत को, सूक्ष्मता को जानने के लिए पहले तो हमें भी सूक्ष्म होना पड़ेगा। बाहरी स्थूल रसों और स्वादों का त्याग करना पड़ेगा। पहले शरीर को हलचल में लाने वाली प्राणों की महीन डोर को पकड़ना पड़ेगा। प्राणों द्वारा नस नाड़ियां जो सारा जीवन लर्ज़िश में हैं, उन पर नियंत्रण रखना होगा। वे नस नाड़ियां जो मन और शरीर को चलाती हैं। अंत में उन पर नियंत्रण होने से उस सूक्ष्म शक्ति का ज्ञान होगा। ज्ञान का अर्थ ही है शक्ति!!

इस सारी रचना का मूल उद्देश्य है कि मनुष्य जन्म के लक्ष्य को अच्छी तरह समझ लें। मानव देह इस सारे ब्रह्मांड में सर्वोत्तम देह है। इस देह में ही सिद्ध पुरुष बनने का बड़ा अवसर मिलता है। देवता या फरिश्ता बनने के लिए, रिद्धि-सिद्धि या रूहानी शक्तियां प्राप्त करने का उपयुक्त अवसर है! आज के हालात् में भले ही मनुष्य इन बातों पर गौर न करे, पर जगत् की रचना का उद्देश्य यही है। जैसे किसी खेल के नियमों का जानकार खेल में अधिक रुची और मज़ा लेता है, वैसे ही यह रहस्य जानने वाला, इस जगत की रचना का भरपूर आनंद ले सकता है।

एक शिक्षक छात्रों को बता रहे थे कि पृथ्वी के नीचे सिर्फ पानी ही पानी है। तब एक विद्यार्थी ने पूछा, ''वह पानी किस के सहारे खड़ा है?'' शिक्षक निरुत्तर हो गया। क्या जवाब दे? जैसे और ग्रह हैं वैसे पृथ्वी रूपी ग्रह भी आकाश में स्थित है। सिर्फ इस पृथ्वी का ध्यान करें, तो भी जवाब नहीं मिलता। सुनी सुनाई, पुस्तकों में पढ़ी

बातें करना आसान हैं। पर उनका सही रहस्य जानना बड़ा मुश्किल है।

एक सूक्ष्म सत्ता के आधार पर यह ब्रह्मांड और इस जैसे अनेक ब्रह्मांड टिके हुए हैं। सिर्फ मनुष्य को ही इस सत्ता का रहस्य जानने, सोचने और समझने की शक्ति प्राप्त है।

वाह! ईश्वर ने इक खेल रचाया, जिसका उसने विस्तार किया
सात्व, राजस और तामस गुणों से, जगत का व्यवहार किया
तीनों गुणों के फहलाव से, पाप और पुण्य प्रकट हुए,
दुःख सुख की रचना हुई, नर्क स्वर्ग का द्वार खुला।
लालच, हवस के लोभ लहर में, जगत का जंजाल बढ़ा,
मोह बढ़ा, अहंकार बढ़ा, मान बढ़ा, अपमान बढ़ा।

सूक्ष्म की शक्ति को भुलाकर – जड़ में फंसा है इन्सान,
सूर्य, चंद्र, तारे, ग्रह, सितारे – जिनका मालिक एक भगवान
प्रलय, उत्पति उस के बस में, लोक परलोक का वह मालिक महान,
चेतन का है यह सारा पसारा, खेल रचा जो उसने है, कैसे करूं बख्यान!!

आदर्शों और सिद्धांतों पर चलने वाला ही महान है!

एक राजा के नगर में जो भी सन्यासी आता था, उसे मान - सम्मान के साथ अपने राज - दरबार में बुलाकर उनसे सवाल पूछता था, ''कौन अधिक महान है, वह जो संसार को त्याग सन्यासी बन जाता है, या वह जो संसार में रहकर गृहस्थ धर्म का पालन करता है?''

बहुत सारे सन्यासी अपनी बुद्धि अनुसार शास्त्रों के श्लोक

व उदाहरणों सहित बताकर कुछ सन्यास धर्म को, तो कुछ गृहस्थ को महान बताने की कोशिश करते थे। पर राजा किसी के भी जवाब से संतुष्ट नहीं हुए, क्योंकि राजा यही कहते कि कोई प्रत्यक्ष सबूत दो। कुछ सन्यासियों ने राजा को गृहस्थ की महानता समझाते सिद्ध न करने की वजह से राजा के आदेशानुसार विवाह कर गृहस्थ आश्रम अपनाया।

बहुत समय पश्चात् आखिर एक नौजवान सन्यासी उस नगर में आया। हमेशा की तरह राजा ने उस सन्यासी को राज दरबार में बुलाया और वही प्रश्न दोहराया। इस सन्यासी ने कहा, ''राजन, दोनों सन्यास व गृहस्थ अपनी - अपनी जगह पर महान हैं।'' इस पर राजा ने कहा, ''पहले मुझे यह प्रमाणित करके बताओ।''

सन्यासी बोले, ''मैं यह प्रमाणित कर सकता हूँ, पर शर्त यह है कि तुम्हें, कुछ दिनों के लिए मेरे साथ चलना पड़ेगा। फिर जहाँ मैं रहूँगा वहीं तुम भी मेरे साथ रहोगे।'' राजा ने सन्यासी की बात स्वीकार कर ली।

राजा और सन्यासी साथ - साथ चलते रहे। चलते - चलते एक बड़े नगर में आ पहुँचे। वहाँ एक बड़ा उत्सव हो रहा था। ढोलक और नगाड़ों की आवाज़ से आकाश गूंज रहा था। लोग सब तरफ से सुंदर वस्त्र पहनकर एकत्रित हो रहे थे। राजा और सन्यासी भी एक कोने में खड़े हो गए। उन्होंने देखा कि एक आदमी नगाड़ा बजाकर ऊँची आवाज़ में कह रहा है, ''इस नगर की राज - कन्या का स्वयंवर हो रहा है। राजकुमारी अपना वर चुनकर उसके गले में वरमाला पहनाएगी।'' आसपास के नगरों के बहुत सारे राजकुमार बन - ठन कर वहाँ आए हुए थे। राजकुमारी भी सुंदर वस्त्र

पहनकर, राजा - रानी को परिक्रमा देकर, एक सिंहासन पर आकर बैठ गई। बाद में एक आदमी ने घोषणा की, ''राजकुमारी जिसे अपना वर चुनेंगी उसे इस राज्य का आधा हिस्सा भी दिया जाएगा।'' राजकुमारी उठकर, वरमाला हाथों में लिए, चारों तरफ घूमने लगी। यह सभा बड़े दबदबे और शान मान वाली थी। हालांकि बहुत से हृष्ट - पुष्ट और सुंदर जवान उस सभा में बैठे थे, पर राजकुमारी उन सब को लांघते हुए आगे बढ़ती गई। अचानक उस राजकुमारी की निगाह एक युवक सन्यासी पर पड़ी। सन्यासी का तेजस्वी चेहरा देखकर राजकुमारी ने तेज़ी से बढ़कर वरमाला उसके गले में डाल दी। मगर उस नौजवान सन्यासी ने गले में से वरमाला निकालकर फेंक दी और कहा, ''ऐ राज कन्या! यह क्या बेहूदगी है? तुमने एक सन्यासी के गले में वरमाला पहना दी! सन्यासी का विवाह से क्या सम्बंध?''

राजा ने आगे बढ़कर कहा, ''बच्चे! तुम चिंता मत करो। इस राज - कन्या के साथ - साथ तुम्हें राज्य का आधा हिस्सा भी मिलेगा, जिस पर राज कर तुम आनंद ले सकते हो। मेरे मरने के बाद बाकी का आधा हिस्सा भी तुम्हें ही मिलेगा।'' यह कह राजा ने ज़मीन पर फेंकी हुई वरमाला उठाकर फिर से उस सन्यासी के गले में डाल दी।

मगर सन्यासी ने फिर से वरमाला उतारकर फेंक दी और कहने लगा, ''न ही मुझे विवाह करना है और न ही मुझे राज चाहिए। मैं सन्यास में ही खुश हूँ।'' इतना कहते सभा से बाहर निकलकर बहुत तेज़ी से दौड़ने लगा। राजकुमारी का मन भी इस सन्यासी पर मोहित हो गया था, इसलिए वह भी सन्यासी के पीछे - पीछे दौड़ने लगी। इन दोनों के

पीछे हमारे वाले राजा और सन्यासी भी दौड़ने लगे।

दौड़ते-दौड़ते सब एक घने जंगल में आ पहुँचे। नौजवान सन्यासी तो जंगल से परिचित था। उनसे नज़रें बचाकर वह गायब हो गया। राजकुमारी परेशान होकर एक पेड़ के नीचे बैठ गई और रोने लगी क्योंकि उसे वापस लौटने का रास्ता नहीं सूझ रहा था। इस पर हमारे वाले राजा और सन्यासी ने राजकुमारी को सान्तवना देते हुए कहा, ''तुम रोओ मत। अब अँधेरा होने वाला है, इसलिए बाहर जा नहीं पाएंगे। सुबह होते ही तुम्हें अपने राज्य में पहुँचा देंगे।''

तीनों ने साथ में एक बड़े पेड़ के नीचे डेरा डाला। उस पेड़ पर एक पक्षियों का जोड़ा अपने दो बच्चों के साथ रहता था। नर पक्षी ने नीचे देखा तो तीन अतिथियों को बैठा पाया। अपनी पत्नी से कहा, ''तीन मेहमान आए हैं। सर्दी का मौसम है। इन्हें अग्नि का प्रबंध करके देना चाहिए, ताकि ये लोग सर्दी से बच सकें।'' ऐसा कहकर वह नर पक्षी उड़ा और न जाने कहाँ से एक जलती हुई लकड़ी का टुकड़ा उठा ले आया, और अतिथियों के आगे डाल दिया। सन्यासी ने तुरन्त बात को समझते हुए सूखे पत्ते, घास आदि जमा करके आग जलाई। इस पर मादा पक्षी बोली, ''महमानों के भोजन का प्रबंध कैसे करेंगे?'' नर पक्षी ने सोचकर कहा, ''हमारे पास और तो कुछ नहीं है। गृहस्थ होने की वजह से, हमारा यह फर्ज़ बनता है, कि हम अतिथियों का यथायोग्य सम्मान करें और उन्हें भूखा रहने न दें। इसलिए मैं इस आग में अपना शरीर अर्पण करता हूँ, ताकि वे पका कर मुझे खाएं।'' इतना कहकर वह नर पक्षी उड़ता हुआ आग में आ गिरा। मेहमानों ने

उसे बचाने की कोशिश की, पर उसे बचा नहीं सके। मादा पक्षी ने सोचा, ''एक पक्षी के मांस से तीन लोगों का पेट कैसे भरेगा।'' यह सोच वह भी उड़कर आग में आ गिरी। बच्चों ने भी माता-पिता की बातें सुनीं। उन्होंने सोचा कि हमारे माता-पिता अपने फर्ज़ का पालन करते हुए अपनी जान दे चुके हैं, हम क्यों पीछे रहें? यह सोच कर, दोनों छोटे बच्चे भी आकर जलती आग में आ गिरे।

यह कौतुक देखकर तीनों विस्मय में पड़ गए। सन्यासी जो पक्षियों की भाषा जानते थे, उसने राजा को सारी बात बताई। तीनों ने दु:खी होकर रात-भर कुछ भी नहीं खाया। सुबह होते ही तीनों जंगल से बाहर आए। राजकुमारी को अपने नगर में वापस पहुँचाकर, सन्यासी और राजा अपने नगर में लौट आए।

सन्यासी ने राजा से कहा, ''आपने प्रत्यक्ष देखा कि सन्यास और गृहस्थ दोनों ही अपनी-अपनी जगह पर महान हैं। संसार का त्याग करो तो उस सन्यासी के समान, जो राज-पाट, सुंदरता, धन-पदार्थ से मुँह मोड़कर फिर उसके लोभ में नहीं फंसा। वह कैसा सन्यासी हुआ जो सब कुछ त्यागकर फिर से नया संसार जोड़े? कबीर साहब कहते हैं, 'सन्यासी जअु गृह करे, ताको बड़ो अभाग'। जो सन्यास के आदर्शों और सिद्धान्तों की पैरवी करता है, वही सच्चा सन्यासी है।

परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना बहुत ही सुंदरता और विचार से की है। हर योनी में नर व मादा का जोड़ा बनाया, ताकि उत्पति का सिलसिला चलता रहे। यह अखंड महासागर, जन-समूह की मौज, आनंद और मनोरंजन से

लहरों में लहराता रहे। नर-मादा का मेल दूसरी योनियों में तो बंधन है पर मनुष्य में मुक्त योग है। संसार का सिलसिला जारी रहे, इसलिए स्त्री-पुरुष के मधुर मिलाप के योग की रचना भी परमात्मा ने स्वयं की है। पुरुष परमात्मा रूप है, तो स्त्री प्रकृति माया। गीता में भगवान श्रीकृष्ण अपने मुखार्विंद से कहते हैं, ''महत् ब्रह्म रूपी प्रकृति तीन गुणों वाली माया मेरी योनी गर्भस्थान है, जिस में सृष्टि के संकल्प रूपी बीज को मैं धारण करता हूँ।''

मेरे और प्रकृति के मिलाप से सब भूत पदार्थों की उत्पति (पैदाइश) होती है। सब गर्भों में जो शरीर (मूर्तियां) उत्पन्न होते हैं, उन सब की गर्भ धारण करने वाली माता ही है और मैं संकल्प रूपी बीज स्थापन करने वाला पिता हूँ। तीन गुण सत्व, रजो और तमो प्रकृति से ही उत्पन्न हुए हैं, जो इस शरीर में अविनाशी देह धारण कर, जीवात्मा को बंधनों में डालते हैं (गीता अध्याय चौदह, श्लोक चौथा, पांचवा और छठा)। सुख, आनंद और मनोरंजन के लिए ईश्वर ने स्वयं मधुर-मिलाप द्वारा स्त्री-पुरुष की रचना की है। गृहस्थ का सच्चा सुख भोगते, आनंद के साथ जीवन व्यतीत करते हुए भी परमात्मा की प्राप्ति हो, ऐसा ही रहस्य इस सृष्टि की रचना में रखा हुआ है। पिछले युगों में ऋषि-मुनि इस सिद्धान्त से गृहस्थ रहकर भी साधना और योग करते थे, क्योंकि उन्होंने इस रचना का रहस्य जान लिया था। परमात्मा के बनाए नियमों और आदर्शों के दायरे में रहकर ही मनुष्य जीवन का सच्चा आनंद भोग कर, बंधन मुक्त जीवन बिताते थे। ईश्वरीय नियमानुसार पुरुष का प्रारंभिक दौर ब्रह्मचर्य में व्यतीत होता था। उसके बाद गृहस्थ में

कुछ समय रहकर, शेष जीवन भक्ति और सेवा में बिताया जाता था। वही ईश्वरीय नियम आज भी चल रहा है। मगर मनुष्य के आचरण, विचारों और व्यवहार में बदलाव आ गया है। मनुष्य ने गृहस्थ में मिले योग को भोग के रूप में अपनाया है। स्त्री - पुरुष का पवित्र बंधन सिर्फ काम - वासना नहीं है, पर वह संतान उत्पन्न करने का साधन है। शास्त्रों ने आज्ञा दी है कि जब स्त्री - पुरुष को संतान पैदा करने की इच्छा हो, तब ही आपस में निश्चित समय पर मिलाप करना चाहिए। उसे फिर संतान के पैदा होने तक नहीं दोहराना चाहिए। पहले लोग इन ईश्वरीय आदर्शों की सचाई और निष्ठा से पैरवी करते थे। आज यह ईश्वरीय नियम अमल में न लाने के कारण, न सिर्फ मनुष्य भटक गया है, पर सच्चे सुख और आनंद भोगने से वंचित हो गया है। विवाह करके आदर्शी गृहस्थ बने रहना एक उच्च अवस्था और महानता की मंज़िल है। बाहर से ब्रह्मचारी रहे, पर मन व कर्म से आदर्शहीन बनने से पतित और भ्रष्ट ही बन जाएंगे। ब्रह्मचर्य का ढोंग करना सिर्फ अपने आप को धोखा देना है। इसलिए बेहतर यही है कि गृहस्थ में आदर्शों और नियमों का पालन करते हुए परमात्मा की प्राप्ति करें।

गुरू अर्जुन देव ने सुखमनी साहब में वर्णन किया है, **''अनदिन कीर्तनु केवल बख्यानु, गृहस्थ महि सोई निर्बानु।'' कबीर साहब ने भी कहा है, ''गृहस्थ में जो रहे उदास (वैरागी) कहे कबीर हउ ताको दास।''**

गृहस्थ आश्रम की महानता वेदों शास्त्रों ने भी गाई है।

